ISSN-0970-6518

हरियाणा खेती

वर्ष 52 अंक 09

स्वर्ण-जयंती वर्ष
2 फरवरी 2019 - 1 फरवरी 2020

कृषि मेला (रबी)

दिनांक : 11-12 सितम्बर, 2019

स्थान : गेट नं. 3, विश्वविद्यालय फार्म, बालसमंद रोड, हिसार

वार्षिक चंदा ₹ 150 सितम्बर 2019 आजीवन सदस्यता ₹ 1500

प्रकाशन अनुभाग
विस्तार शिक्षा निदेशालय
चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

हरियाणा खेती

निदेशक, शिक्षा विभाग हरियाणा द्वारा उच्च/उच्चतर विद्यालयों के लिए उनके पत्र क्रमांक 25/34.7 4 पु. (2) दिनांक 4.9.74 द्वारा अनुमोदित

ã कापीराइट प्रकाशकाधीन

वर्ष 52 | सितम्बर 2019 | अंक 09

इस अंक में

लेख का नाम		लेखक का नाम	पृष्ठ
धान की फसल में पोषक तत्वों की कमी के लक्षण तथा उनका निवारण	-	देवराज, कविता एवं राजबीर गर्ग	1
मृदा में बोरोन की कमी : लक्षण और महत्व	-	नरेन्द्र, रोहतास कुमार एवं एच. के. यादव	2
शुष्क व बारानी क्षेत्रों में - अरंड की खेती का महत्वपूर्ण योगदान	-	निर्मल कुमार, डी. पी. मलिक एवं सुमित	4
कपास के कीड़ों का एकीकृत प्रबंधन	-	मीनू एवं योगिता बाली	5
दाना मटर : सिफारिश की गई उन्नत किस्में	-	ज्योति	6
कपास की फसल में लगने वाले रोग : लक्षण एवं नियंत्रण	-	मनमोहन, ममता एवं ओमेंद्र सांगवान	7
गुलाब की खेती: एक लाभदायक विकल्प	-	राजेश लाठर, वंदना एवं रविंदर सिंह	7
सदाबहार की खेती	-	राजेश कुमार आर्य, वंदना एवं आर.पी. सहारण	9
चुकन्दर - एक बहुउद्देशीय व बहुउपयोगी फसल	-	हर्षिता सिंह, सूर्यपाल सिहं एवं सज्जन सिंह	10
तिल उत्पादन : उन्नत कृषि क्रियाएं	-	रमेश कुमार, अशोक ढिल्लों एवं जयलाल यादव	11
अजोला के लाभ एवं तैयार करने की विधि	-	सौरभ, कौटिल्य चौधरी एवं कुलदीप सिंह	12
फसल उत्पादन में जैव उर्वरक का महत्त्व	-	जगदीश प्रशाद, राजेश गेरा एवं बलजीत सिंह	18
नीम द्वारा निमेटोड (सूत्रकृमि) का समाधान	-	विनोद कुमार, प्रियंका दुग्गल एवं अनिल कुमार	19
पराली से बायोगैस का उत्पादन : एक प्रबल संभावित तकनीक	-	यादविका, कमला मलिक एवं वाई. के. यादव	19
संरक्षण कृषि : मृदा प्रबंधन तकनीक	-	नरेन्द्र, रोहतास कुमार एवं अबीर डे	21
केंचुआ खाद : विधि, उपयोग व लाभ	-	मुकेश कुमार, राजेश कुमार एवं अमित कुमार	23
बाजरा खाने के बेमिसाल फायदे	-	संतोष रानी, पूनम यादव एवं संदीप भाकर	24
फसल अवशेष प्रबन्धन	-	अभिलाष सिंह मौर्य, सूबे सिंह एवं जोगिन्दर सिंह मलिक	25
चारा फसलों में एच.सी.एन. विषाक्तता	-	राजेश कथवाल, के. डी. शर्मा एवं सतपाल	26
जल का जीवन में महत्व और बचत के उपाय	-	अमनदीप सिह, नरेंद्र कुमार एवं सूबेसिंह	26
ढींगरी खुम्ब उत्पादन: एक लाभकारी व्यवसाय	-	मीनू, रूमी रावल एवं स्वाति मेहरा	28
Common Fertilizers Used in Haryana	-	Pooja Rani, Usha Kumari and Devraj	29
Rainwater Harvesting – A Solution to Water Crisis	-	Manjeet, Parveen Kumar and Naveen Kumar	30
Burning of Crop Residues – A National Threat	-	N. K. Goyal, Sandeep Rawal and B. R. Kamboj	31

स्थाई स्तम्भ : अक्तूबर मास के कृषि कार्य **13**

तकनीकी सलाहकार
डॉ. आर. एस. हुड्डा
निदेशक, विस्तार शिक्षा

सह-निदेशक (प्रकाशन)
डॉ. बिमलेन्द्र कुमारी

संपादक
डॉ. सुषमा आनंद
सह-निदेशक (हिन्दी)

संकलन
डॉ. सूबे सिंह
सहायक निदेशक (विस्तार शिक्षा)

सम्पादक (अंग्रेजी)
सुनीता सांगवान
प्रकाशन अनुभाग

डीटीपी एवं आवरण सज्जा
राजेश कुमार
प्रकाशन अनुभाग

धान की फसल में पोषक तत्वों की कमी के लक्षण तथा उनका निवारण

- देवराज, कविता[1] एवं राजबीर गर्ग
कृषि विज्ञान केन्द्र, पानीपत
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

पोषक तत्व उन तत्वों को कहते हैं जिनकी कमी से पौधे अपना जीवन चक्र पूरा न कर सकें तथा उनकी कमी केवल उसी पोषक तत्व से पूरी होती हो। इन तत्वों का पौधों के पोषण में सीधा योगदान होता है। इनकी संख्या 17 है तथा इनमें 9 तत्व मुख्य पोषक तत्व कहलाते हैं जिनकी पौधों को ज़्यादा ज़रूरत होती है। इसके अतिरिक्त 8 तत्व सूक्ष्म पोषक तत्व कहलाते हैं। उपयोग की दृष्टि से हरियाणा की मृदा में नाइट्रोजन, फास्फोरस तथा पोटाशियम अधिक महत्वपूर्ण है। पिछले कुछ वर्षों में जस्ता, लोहा तथा गन्धक का उपयोग भी बढ़ रहा है। धान की फसल में इन पोषक तत्वों की कमी के लक्ष्ण तथा उनका निवारण इस प्रकार है :

नाइट्रोजन : इसकी कमी से पौधे पीले, कमज़ोर व बौने नज़र आते हैं, फुटाव कम होता है, पत्तियों की संख्या भी कम हो जाती है। इसकी कमी नीचे की पुरानी पत्तियों पर पहले दिखाई देती है, पूरी फसल पीली दिखाई देने लगती है तथा पैदावार में भारी कमी आ जाती है। सिफारिश की गई यूरिया की मात्रा (130 कि. ग्रा.) प्रति एकड़ बौनी किस्मों में एवं 105 कि. ग्रा. प्रति एकड़ बौनी बासमती किस्मों में डालने पर प्राय: नाइट्रोजन की कमी नहीं आती है। अगर फिर भी कमी के लक्षण दिखाई दें तो पानी में यूरिया का 3 प्रतिशत का घोल बनाकर छिड़काव करें। यूरिया का अगला छिड़काव 10-12 दिन के अन्तराल पर करें।

फास्फोरस : इसकी कमी से पौधे बौने व गहरे हरे रंग के दिखाई देते हैं। पौधों में फुटाव कम होता है तथा शुरूआत में पौधा अकेला तथा पतले आकार का होता है। पत्तियों पर बैंगनी रंग के धब्बे बाद में तने पर भी दिखाई देने लगते हैं। अगर धान रोपाई के समय सिफारिश की गई फास्फोरस की मात्रा (24 कि. ग्रा. प्रति एकड़) डाली गई है तो फिर फास्फोरस की कमी नहीं आती है। अगर खड़ी फसल में इसके लक्षण दिखाई दे तो खेत में खड़े पानी में 50 कि. ग्रा. डी. ए. पी. प्रति एकड़ के हिसाब से डालें। अगर फास्फोरस की कमी फसल की बाद की अवस्था में दिखाई दे तो पानी में 2 प्रतिशत डी. ए. पी. का घोल बनाकर छिड़काव करें। अगला छिड़काव 10-12 दिन के अन्तराल पर करें।

पोटाशियम : पोटाशियम की कमी के लक्षण सबसे पहले नीचे वाली पत्तियों पर दिखाई देते हैं। इसकी कमी से पत्तियां पीली पड़ जाती हैं। पीलापन पत्तियों की नोंक से शुरू होकर शिराओं की तरफ बढ़ जाता है तथा पौधों की पत्तियां सूखनी शुरू हो जाती हैं। पत्तियों की चौड़ाई घट जाती है तथा पौधों की वृद्धि रुक जाती है। दाने हल्के बनते हैं तथा पैदावार घट जाती है। अगर धान की रोपाई के समय सिफारिश की गई पोटाशियम की मात्रा (24 कि. ग्रा. प्रति एकड़) डाली गई है तो इसकी कमी के लक्षण नहीं दिखाई देते हैं। अगर खड़ी फसल में इसकी कमी के लक्षण दिखाई दें तो 40 कि. ग्रा. प्रति एकड़ म्यूरेट ऑफ पोटाश को खड़े पानी में डालें।

गंधक : गंधक की कमी मुख्यत: रेतीली ज़मीन में होती है। इसकी कमी के लक्षण सबसे पहले नई पत्तियों पर दिखाई देते हैं। पत्तियां पीली दिखाई देने लगती हैं तथा पत्तियों के किनारे ऊपर या नीचे की ओर मुड़ जाते हैं। डी. ए. पी. की जगह सिंगल सुपर फास्फेट प्रयोग करने से इसकी कमी के लक्षण दिखाई नही देते हैं। 100 कि. ग्रा. प्रति एकड़ जिप्सम प्रति एकड़ प्रयोग करने से गंधक की कमी दूर की जा सकती है। खड़ी फसल में 0.5 प्रतिशत ज़िंक सल्फेट को 2.5 प्रतिशत यूरिया में मिलाकर छिड़काव करने से भी इसकी कमी पूरी की जा सकती है।

जस्ता : जस्ते की कमी से पौधे की वृद्धि रुक जाती है। नीचे से तीसरी या चौथी पत्ती के मध्य में चाकलेटी रंग के भूरे रंग के धब्बे बन जाते हैं। फसल देर से पकती है। इसकी कमी को खैरा नाम की बीमारी के नाम से भी जाना जाता है। धान की रोपाई के समय 10 कि. ग्रा. प्रति एकड़ की दर से ज़िंक सल्फेट डालने से इसकी कमी नहीं रहती है। अगर खड़ी फसल में जस्ते की कमी के लक्षण दिखाई दें तो 0.5 प्रतिशत ज़िंक सल्फेट व 2.5 प्रतिशत यूरिया पानी में घोल बनाकर 10-12 दिन के अन्तराल पर दो छिड़काव करें।

लोहा : लोहे की कमी सबसे ज़्यादा धान की नर्सरी में दिखाई देती है इसकी कमी होने पर नई पत्तियां पीली व सफेद हो जाती हैं तथा नोक झुलसी हुई दिखाई देती है। पत्तियों में बीच का भाग पहले पीला व बाद में सफेद दिखाई देने लगता है जबकि पत्ती के बीच की नसें हरी बनी रहती हैं। लोहे की कमी को पूरा करने के लिए पानी में फैरस सल्फेट (हरा कशीश) का 0.5 प्रतिशत व यूरिया का 2.5 प्रतिशत का घोल बना कर छिड़काव करें। इसके 10-12 दिन बाद दूसरा छिड़काव करें।

इसके अलावा मैंगनीज़, तांबा तथा बोरोन की कमी भी धान की फसल में आ सकती है लेकिन हरियाणा की ज़मीन में इनकी कमी बहुत ही कम इलाकों में है। इसलिए किसानों को ऊपर लिखे गए पोषक तत्वों पर ज़्यादा ध्यान देना चाहिए। ।

किसानों के लिए आवश्यक सूचना

कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय ने 8 अगस्त, 2018 को SO.3951(ई) के तहत एक सूचना जारी की है कि 12 कीटनाशक (इनसेक्टिसाइड्स+ फंजीसाइड्स+हर्बीसाइड्स) का प्रयोग/इस्तेमाल 8 अगस्त 2018 से ही बन्द कर दिया गया है। इनकी सूची इस प्रकार है:

8 अगस्त, 2018 से प्रतिबंधित कीटनाशक

1. **बेनोमाईल** (Benomyl)
2. **कार्बाराइल** (Carbaryl)
3. **डायजिनॉन** (Diazinon)
4. **फेनारिमोल** (Fenarimol)
5. **फेन्थियॉन** (Fenthion)
6. **लिन्यूरॉन** (Linuron)
7. **मैथॉक्सी इथाइल मरकरी क्लोराइड** (Methoxy Ethyl Mercury Chloride)
8. **मिथाइल पैराथियॉन** (Methyl Parathion)
9. **सोडियम सायनाइड** (Sodium Cyanide)
10. **थियोमेटॉन** (Thiometon)
11. **ट्रायडमॉर्फ** (Tridemorph)
12. **ट्राइफ्लूरालिन** (Trifluralin)

नोट : किसी भी लेख में अगर इन कीटनाशकों के प्रयोग के बारे में लिखा है तो उसे रद्द माना जाए।

[1]शोध छात्रा, मृदा विज्ञान विभाग, चौ. च. सिं. ह. कृ. वि., हिसार।

मृदा में बोरोन की कमी : लक्षण और महत्व

- नरेन्द्र, रोहतास कुमार एवं एच. के. यादव
मृदा विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

कृषि रसायन के रूप में बोरोन का महत्व बहुत तेज़ी से बढ़ रहा है। मृदा में इसकी उपलब्धता कृषि उत्पादन का एक महत्वपूर्ण निर्धारक है। सूक्ष्म पोषक तत्व में बोरोन की कमी सबसे आम और व्यापक है जो पौधे की वृद्धि को रोकती है तथा उपज को कम करती है। सामान्यत: स्वस्थ पौधे के विकास के लिए इसकी निरंतर आपूर्ति की आवश्यकता होती है। यह पुराने से नए ऊतक में परिवर्तित नहीं होता है इसीलिए इसकी कमी के लक्षण सबसे पहले कम उम्र के बढ़ते ऊतकों में दिखाई देने लगते हैं। फसलों की अधिक उपज व अच्छी गुणवत्ता प्राप्त करने के लिए पर्याप्त बोरोन की आपूर्ति अति आवश्यक है। सूक्ष्म पोषक तत्वों की श्रेणी में बोरोन की कमी पोषक तत्वों के उपयोग और फसल की पैदावार को सीमित करने वाले सबसे महत्वपूर्ण अवरोधों में से एक है। मृदा और फसल में बोरोन की कमी और विषाक्तता को देखते हुए इसका स्तर तथा सांद्रता का निर्धारण करना ज़रूरी है चूंकि बोरोन भारतीय मृदा में ज़िंक के बाद दूसरे सबसे कमी वाले सूक्ष्म पोषक तत्व के रूप में उभर रहा है। इसलिए फसलों की पैदावार को बनाए रखने के लिए इसके स्थानिक और ऊर्ध्वाधर वितरण की निगरानी भी बहुत महत्वपूर्ण है।

विभिन्न फसलों में बोरोन की अलग-अलग मात्रा का उपयोग करने से विभिन्न फसलों की पैदावार बढ़ाने में सहायता मिलती है। मृदा में बोरोन का एक व्यापक स्तर बनाए रखने के लिए इसको प्रमुख फसलों में उपयोग करें तथा उर्वरक अनुसूची का एक हिस्सा बनाएं। भारतीय मृदा में विशेष रूप से सघन फसलीकरण के अंतर्गत बोरोन की व्यापक कमी के कारण बोरोन के उर्वरकों का प्रयोग करना अति आवश्यक हो गया है। परन्तु कृषि भूमि में बोरोन का प्रबन्धन कुछ जटिल है क्योंकि मृदा व पौधों में इसकी कमी व विषालुता की निर्धारित सीमा तय करना बड़ा कठिन है तथा मृदा में बोरोन के मूल स्तर के सही व नियमित मूल्यांकन करने में कठिनाई होती है और प्रयोग किये जाने वाले बोरोन की मृदा अवयवों के साथ होने वाली प्रतिक्रिया का जटिल होना भी है।

बोरोन के कार्य

1. बोरोन एक ऐसा तत्व है जिसकी सान्द्रता मिट्टी और पौधों दोनों मे ही अपेक्षाकृत कम पायी जाती है इसकी एक पीपीएम मात्रा पौधों के पोषण के लिए पर्याप्त समझी जाती है। विभिन्न फसलों के लिए विषालुता की मात्रा भिन्न-भिन्न होती हैं। पौधे इस तत्व का अवशोषण बोरेट आयन के रूप में करते हैं।
2. बोरोन यद्यपि किसी एन्जाइम का संघटक नहीं है, फिर भी यह अनेक एन्जाइमों जैसे कैटालेज, आक्सीडेज, पराक्सीडेज और सुक्रेज की क्रियाशीलता में वृद्धि करता है।
3. कार्बोहाइड्रेट तथा नाइट्रोजन उपापचयन मे भी बोरोन का महत्वपूर्ण योगदान रहता है।
4. आमतौर पर शर्करा वियोजन (Glycolysis) प्रक्रिया द्वारा ग्लूकोज़ का विघटन होता है। कुछ ऊतकों में बोरोन की उपस्थिति में यह प्रक्रिया पेन्टोज शन्ट पाथवे (Pantase shunt pathway) द्वारा भी सम्पन्न होती है।
5. बोरोन-6 फास्फोग्लूकोनेट से मिलकर 6-फास्फोग्लूकोनेट-बोरेट यौगिक बनता है जो कि पुन: उपचयत नहीं होता है।
6. बोरोन की कमी प्राय: फिनोलिक अम्ल के अधिक संश्लेषण के बाद ही देखी जाती है।
7. बोरोन के अभाव से परागकण और पराग नली की वृद्धि पर भी भयंकर कुप्रभाव पड़ता है।
8. पत्तियों में शर्करा स्थानान्तरित करने में बोरोन महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। बोरोन की कमी हो जाने पर टमाटर और तम्बाकू की पत्तियों में शर्करा और निकोटिन का संचयन अधिक हो जाता है। इसके अभाव में पौधों में कौफीन क्लारोजनिक अम्ल का भी संचयन होता है।
9. जल-अवशोषण, उत्स्वेदन और ऋणायनों का अवशोषण भी बोरोन द्वारा नियंत्रित होता है जोकि प्रोटीन और न्यक्लिक अम्ल के संश्लेषण तथा फास्फेट के उपयोग और कोशिका भित्ति में पेक्टिन पदार्थ के निर्माण में सहायक होता है। पौधों में बोरोन की भूमिका के बारे में सटीक जानकारी अभी तक नहीं हो पायी है। क्योंकि इसका विश्लेषण अपेक्षाकृत बहुत जटिल है तथा साथ ही उचित रेडियो आइसोटोप का अभाव भी होता है।

पौधों में बोरोन की कमी के लक्षण

1. बोरोन की कमी के लक्षण सर्वप्रथम नई निकलती हुई पत्तियों या शिराओं में दिखाई पड़ते हैं जिससे पत्तियाँ मोटी होकर मुड़ जाती हैं।
2. इसकी कमी से जड़ों का विकास भी रुक जाता है तथा मुख्य तने की फुनगी मर जाने के कारण फूल और फल नहीं लगते हैं।
3. इसके अतिरिक्त पत्तियों में कड़ापन आ जाता है तथा झुर्रियां पड़ने लगती हैं और हरिमाहीन धब्बे दिखाई भी देने लगते हैं।
4. बोरोन की अधिक कमी होने पर पत्तियाँ भी सूख जाती हैं।

बोरोन की कमी से होने वाले रोग

1. आंतरिक गलन (Heart rot): शीर्ष गलन (Crown rot) या शुष्क गलन (Dry rot) के नाम से जाना जाने वाला रोग चुकंदर और गैंदे (मैरीगोल्ड) में विशेष रूप से देखा जा सकता है। आंतरिक जड़ों के ऊतक मर जाते हैं तथा नई पत्तियाँ बुरी तरह मुड़ जाती हैं। शिराएँ पीली पड़ जाती हैं और पर्णवृन्त कड़े हो जाते हैं। शाखाओं के वर्धनशील अग्र भाग भी मरने लगते हैं।
2. फूल गोभी का भूरा रोग (Browning of cauliflower): शीर्ष पर भूरे चकत्ते पड़ना, पत्तियों का मोटा तथा कड़ा हो जाना, नीचे की ओर मुड़ जाना, मध्य शिरा के किनारे- किनारे एवं पर्णवृंत पर फफोले पड़ जाना इस रोग के मुख्य लक्षण हैं।
3. लूसर्न की पीली फुनगी का रोग (Yellow top of lucerne): इस रोग में पूरी पत्ती समान रूप से पीली या भूरी हो जाती है जिससे तने की पोरी (intenode) छोटी हो जाती है और शाखाओं के वर्धनशील भाग भर जाते हैं।
4. तंबाकू की शिखर व्याधि (Top sickness of tobacco): नई निकलने वाली पत्तियों का आधार अग्रभाग की अपेक्षा अधिक पीला दिखाई पड़ने लगता है जिससे आधार के ऊतक टूट जाते हैं तथा कलियां मर जाती हैं। पुरानी पत्तियां भी मोटी और कड़ी हो जाती हैं जोकि ऊपर की ओर मुड जाती हैं।

5. नींबू के फलो का कठोरपन (Hard fruit of citrus): नींबू कुल के पौधों के वर्धनशील अग्र भाग मर जाते हैं। पेड़ों में फूल कम आते हैं तथा फल झड़ जाते हैं। फलों का आकार भद्दा और छिलका मोटा हो जाता है। मध्यवर्ती अक्ष के चारों ओर गोंद की तरह धब्बे दिखाई देने लगते हैं।

6. विदलित तना (Cracked stem): सिलेरी में होने वाले रोग को विदलित तना के नाम से जाना जाता है। यह रोग सर्वप्रथम सन् 1935-37 में फ्लोरिडा में प्रकट होते देखा गया है।

बोरोन की विषालुता के लक्षण

फसलों की प्रकृति के अनुसार बोरोन की विषालुता के दृश्य लक्षणों में अन्तर देखा गया है। उदाहरणार्थ, पत्तियों के अग्र भाग एवं उनकी नोकों का झुलसापन, नसों एवं अनियमित क्षेत्रों के बीच पीलापन, ऊतक-क्षयी धब्बे, निचली पत्तियों या पर्णकों का पीलापन जो बाद में भूरा तथा अन्ततः झुलसा हुआ दिखाई देता है। सर्वप्रथम पत्तियों के अग्र भाग प्रभावित होते हैं जो बाद में नीचे की ओर पत्तियों के किनारों के साथ-साथ फैल जाते हैं।

- दलहनी फसलों में सभी पर्णक लगभग समान रूप से प्रभावित होते हैं जिससे पौधों की वृद्धि रुक जाती है तथा झाड़ीनुमा दिखाई पड़ने लगती है। चोड़ी पत्तियों में पीलापन दिखाई पड़ने के दो सप्ताह के अन्दर, सबसे नई पत्तियों को छोड़कर अन्य सभी पत्तियां प्रभावित होती हैं। इस बीच पुरानी पत्तियां भूरे धब्बों द्वारा आच्छादित हो जाती हैं जिसके कारण वे सूखी एवं सख्त दिखाई देने लगती हैं। मृदा में बोरोन की उग्र विषालुता की स्थिति में, बीजों का अंकुरण भी कुप्रभावित होता है।

पौधों में बोरोन की कमी एवं विषालुता के क्रान्तिक मान

- फसलों में बोरोन की कमी एवं विषालुता के क्रान्तिक स्तरों में बहुत बड़ा अन्तर देखा गया है। सामान्यतः अधिकांश प्रमुख फसलों के लिए बोरोन की कमी का क्रान्तिक स्तर 20 मि.ग्रा./कि.ग्रा. से कम निर्धारित किया गया है और ऐसी स्थिति में बोरोन के प्रयोग से आर्थिक लाभ होता है।
- बोरोन की विषालुता का क्रान्तिक स्तर 200 मि.ग्रा./कि.ग्रा. से अधिक बताया गया है। इस स्तर तक बोरोन के प्रयोग से लाभ मिल सकता है परन्तु इससे अधिक होने पर बोरोन के प्रयोग से उपज में कमी आ सकती है।
- बोरोन की विषालुता की स्थिति पश्चिमोत्तर-भारत विशेषतः राजस्थान, पंजाब, हरियाणा एवं उत्तर प्रदेश की लवणीय-क्षारीय मृदा में देखी गई है। ऐसा मुख्यतः सिंचाई-जल में बोरोन के बाहुल्य के कारण होता है।
- फसलों में बोरोन की आवश्यकता काफी भिन्न है। धान की फसल में बोरोन की मांग फलीदार एवं सरसों-कुल से फसलों की अपेक्षाकृत कम रहती है तथा विभिन्न फसलों के लिए बोरोन की संवेदनशीलता का तुलनात्मक विवरण एवं क्रान्तिक सीमाएं सारणी 1 और सारणी 2 में दिया गया है।
- बोरोन की विषालुता होने पर हरिमाहीनता के लक्षण दिखाई देने लगते हैं। बोरोन युक्त उर्वरकों की अधिक मात्रा प्रयोग करने पर भी विषालुता का भय बना रहता है तथा सिंचाई जल में बोरोन की प्रचुर मात्रा होने के कारण ऐसे जल द्वारा सिंचित फसलों में विषालुता उत्पन्न हाने की आशंका बनी रहती है। ।

सारणी-1: फसलों की बोरोन संवेदनशीलता का तुलनात्मक विवरण

फसलें (संवेदनशीलता)		
अत्यधिक	मध्यम	कम
लूसर्न या रिजका, फूलगोभी, सेलेरी, शकरकंद, शलजम।	पत्तागोभी, तम्बाकू, गाजर, टमाटर, कपास, मक्का, सलाद, मूली, पालक, आडू वर्ग।	सेमवर्गीय, जौ, जई, मटर वर्गीय, सोयाबीन वर्गीय, आलू, ज्वार, धान, गेहूँ, नीबू वर्गीय।
सेब, गुलाब वर्ग, सूरजमुखी।	अंगूर वर्ग, उड़द, चना, सरसों, प्याज़।	

सारणी-2 : विभिन्न फसलों के लिए बोरोन की क्रान्तिक सीमाएं

	बोरोन की मात्रा (मि.ग्रा./कि.ग्रा.)						
फसल	कमी	पर्याप्तता	विषालुता	फसल	कमी	पर्याप्तता	विषालुता
धान	<18	18-150	400	फूलगोभी	23	36	>100
गेहूँ	11	17	140	पत्तागोभी	5	36	80
मक्का	10	15-90	200	मूली	<8	36	86
जौ	13	21	476	टमाटर	14	36	90
ज्वार	<16	16-150	625	आलू	15	21-50	180
चना	12.6	32-95	214	तम्बाकू	14	34-96	110
उर्द	23.6	32-95	-	खीरा	<20	40-120	>300
मूंगफली	-	29-125	218	कपास	14	29-125	522
सूरजमुखी	8	29-125	>160	जई	3.5	14-24	>50
सोयाबीन	15	44	63	रिजका	15	32	516
शकरकंद	15	35-200	800				

स्त्रोत-विभिन्न शोध पत्रों से संकलित

आवश्यक सूचना

चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार स्थित किसान सेवा केन्द्र में किसानों हेतु सप्ताह में तीन दिन सोमवार, बुधवार एवं शुक्रवार को 10 से 12 बजे तक निःशुल्क फोन सुविधा (हैल्प लाइन) फोन नं. 1800-180-3001 पर उपलब्ध है जिसमें वैज्ञानिकों से कृषि-संबंधी परामर्श किया जा सकता है। यदि किसी जगह से यह फोन सुविधा उपलब्ध नहीं हो तो किसान भाई 01662-232768 पर सशुल्क फोन करके उपर्युक्त दिनों में इस सुविधा का लाभ उठा सकते हैं।

क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, बावल में भी सोमवार, बुधवार, शुक्रवार 10 से 12 बजे तक फोन नं. 1800-180-4002 पर यह निःशुल्क फोन सुविधा उपलब्ध है।

क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, ऊचानी (करनाल) में भी मंगलवार व बृहस्पतिवार 10 से 11 बजे तक फोन नं. 1800-180-3111 पर यह निःशुल्क फोन सुविधा उपलब्ध है।

शुष्क व बारानी क्षेत्रों में – अरंड की खेती का महत्वपूर्ण योगदान

- **निर्मल कुमार, डी. पी. मलिक एवं सुमित**
कृषि अर्थशास्त्र विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

अरंड भारत की महत्व पूर्ण एवं व्यावसायिक अखाद्य तिलहन फसल है। भारत का अरंड के क्षेत्रफल एवं उत्पादन में विश्व में प्रथम स्थान है तथा अरंड तेल के विश्व बाज़ार में लगभग 87.42 प्रतिशत हिस्सा भारत का है। वर्ष 2016 के दौरान भारत ने विश्व का 1554 हज़ार टन (87.42%) का उत्पादन किया जो कि 870 हज़ार हैक्टेयर (69.22%) अरंड का क्षेत्र था। भारत में अरंडी की फसल की उत्पादकता में 1786.2 किलोग्राम/हैक्टेयर था। भारतीय किस्म के अरंडी में तेल की मात्रा 48% और 42% है। इसके उत्पादन के लिए एक गर्म और आर्द्र जलवायु की आवश्यकता होती है। जोकि भारत में काफी अनुकूल है। अरंडी के बीज से प्राप्त अरंडी का अखाद्य तेल प्राप्त होता है। लेकिन इसका महान औद्योगिक महत्व है। अरंड तेल का उपयोग व्यावसायिक उद्देश्य के लिए किया जाता है क्योंकि इसकी बहुमुखी, नवीकरणीय संसाधन में चिकनाई, सरफेस, सरफेस कोटिंग, टेलीकॉम, इंजीनियरिंग प्लास्टिक, फार्मा, रबर केमिकल्स, नाइलन, साबुन, हाइड्रोलिक तरल पदार्थ, पेंट और पॉलिमर जैसे विशाल और विविध उपयोग होते हैं। इसके अलावा अरंडी का सह-उत्पाद कृषि में जैविक खाद के रूप में उपयोग होता है। अरंडी का मुख्य उत्पादन गुजरात, राजस्थान एवं आंध्र प्रदेश में होता है। अकेले गुजरात राज्य मे अरंड का 81.44 प्रतिशत उत्पादन होता है।

हरियाणा में अरंड की खेती कम सिंचित एवं पूर्ण सिंचित, शुष्क व बारानी क्षेत्र एवं राजस्थान की सीमा से जुड़े ज़िलों जैसे सिरसा, भिवानी, हिसार, फतेहाबाद, महेन्द्रगढ़, रेवाड़ी, एवं गुरूग्राम के कुछ हिस्से में अरंड की सफलता की प्रबल सम्भावनाएं हैं। अधिक आमदनी व कम जोखिम के लिए खरीफ व रबी की विभिन्न फसलों के साथ अन्त: फसल प्रणाली में अरंड की बिजाई करने से लाभप्रद व्यवसाय है तथा एकल फसल प्रणाली में भी लाभप्रद फसल है।

उन्नत किस्में/हाइब्रिड : बारानी एवं कम सिंचित क्षेत्रों के लिए: डी. सी. एच. -177

सिंचित एवं उच्च प्रबंधन के लिए जी. सी. एच. -4, 5, 6, 7, डी. सी. एच. -32, 177, एवं डी. सी. एच. - 519

विशेष : डी. सी. एच. -177

बिजाई का समय : अरंड की बिजाई का सर्वोत्तम समय जून के अन्त से मध्य जुलाई है। जुलाई के अन्त तक बिजाई अवश्य पूरी कर लें। बाद की बिजाई में सर्दी का प्रकोप अधिक होने से उत्पादन कम हो जाता है।

बीज की मात्रा एवं बिजाई की विधि : बारानी एवं कम सिंचित 90-120 सैं.मी. गुणा 60 सैं.मी. बिजाई के लिए 3-4 कि.ग्रा. बीज प्रति एकड़ का उपयोग करें। सिंचित 90-120 सैं.मी. गुणा 60 सैं.मी. तथा 1.6 कि.ग्रा. बीज प्रति एकड़ प्रयोग करें। बीज की गहराई 2 से 3 इंच रखें।

बीज उपचार : बीज जनित रोगों से बचाव के लिए थाइरम या कैप्टान 3 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज या बाविस्टीन 2% की दर से उपचार करना लाभदायक है। बिजाई से पहले बीज को 12 से 24 घंटे पानी में भिगोना लाभप्रद है।

उर्वरकों का प्रयोग : वर्षा आधारित फसल में 8 कि.ग्रा. नाइट्रोजन व 16 कि.ग्रा. फास्फोरस प्रति एकड़ बिजाई से पहले डालें। नाइट्रोजन की 2 अतिरिक्त मात्रा (8-8 कि.ग्रा.) बिजाई के 35-40 व 65-70 दिन बाद वर्षा के अनुसार दें। सिंचित फसल में 8 कि.ग्रा. नाइट्रोजन व 16 कि.ग्रा. फास्फोरस प्रति एकड़ बिजाई से पहले डालें। नाइट्रोजन की 2 अतिरिक्त मात्रा (8-8 कि.ग्रा.) बिजाई के 35-40 व 65-70 दिन बाद वर्षा के अनुसार दें। विशेष: शुरू में ज़्यादा नाइट्रोजन से वानस्पतिक वृद्धि ज़्यादा होती है अत: नाइट्रोजन कम दें। अधिक पैदावार के लिए पके गुच्छों की कटाई के बाद सिंचाई के साथ 8 कि.ग्रा. नाइट्रोजन दें।

खरपतवार नियंत्रण : बिजाई के चौथे एवं सातवें सप्ताह में दो निराई-गुड़ाई करने से खरपतवार नियंत्रण हो जाता है। कपास की तरह अरण्ड में भी ट्रैक्टर, बैलों या ऊंट से निराई-गुड़ाई की जा सकती है।

रासायनिक : बिजाई के बाद लेकिन फसल उगाने से पहले 800 मि. ली. पैंडीमिथालीन/एकड़ का छिड़काव करने से भी खरपतवार नियंत्रण हो जाता है। बिजाई के 35-40 दिनों बाद उगे खरपतवारों को हाथ से निकाल देना चाहिए।

सिंचाई : प्राथमिक अवस्था में अरण्ड को ज़्यादा पानी की ज़रूरत नहीं होती, परंतु लंबी अवधि (20-25 दिन) तक शुष्क दशा में अधिकतम वृद्धि के समय सिंचाई की आवश्यकता होती है। सिंचाई देने से अरण्ड की पैदावार में आशातीत बढ़ोत्तरी होती है। पानी की उपलब्धता एवं भूमि की जलधारण क्षमता के अनुरूप 3-4 सिंचाइयों से लेकर 7-8 सिंचाइयां देनी पड़ती हैं। बिजाई से 50-60 दिन एवं 80-95 दिन बाद अगर नमी की कमी हो तो सिंचाई अवश्य करें। बाद में पानी सिंचाई की उपलब्धता के अनुसार गुच्छों की कटाई के बाद गर्मी में 15-20 व सर्दी में 25-30 दिन के अंतराल पर करते हैं।

अरण्ड के साथ अन्त: फसलों का प्रयोग : अरण्ड की लाइनों में दूरी को 5-8 फीट तक बढ़ाकर शुरू के 4-5 महीने तक अन्त: फसलों की खेती बहुत ही कामयाब एवं लाभप्रद पायी गयी है। अरण्ड के साथ मूंग, ग्वार, मूंगफली, तिल, कपास, अरहर, मोठ, टमाटर, मिर्च एवं अगेती मेथी, धनिया, मूली, गाजर आदि की अन्त: फसल पद्धति विभिन्न राज्यों में प्रचलित है।

पाले से बचाव : समय पर बिजाई करें, खरपतवार नियंत्रण एवं अच्छा प्रबंधन करें, ऊँची-नीची टिब्बों वाली ज़मीन में टिब्बों पर फसल लें, पोटाश खाद की पूरी मात्रा दें, एवं दिसंबर के दूसरे पखवाड़े से लेकर जनवरी अंत तक पानी की कमी न होने दें।

कटाई : कैप्सूल (फल) का रंग पीला पड़ और कुछ फल (एक चौथाई) पक कर सूख जाएं तो गुच्छे को काटकर सूखने के लिए डाल दें। पहला गुच्छा बिजाई के 90-120 दिन बाद पक कर कटाई के लिए तैयार हो जाता है। लगभग 25-30 दिन के अंतर पर विभिन्न क्रम के गुच्छे पकते रहेंगे। अत: 4-6 कटाई करनी पड़ सकती हैं। सिंचित दशा में आखरी कटाई अप्रैल अंत या मई के पहले सप्ताह तक हो जाती है।

कढ़ाई : खलिहान में गुच्छों के सूखने के बाद झाड़-पीटकर कैप्सूल (फलों) को डंडियों से अलग कर लें और थ्रैशर से दाने/बीज निकाल लें। ध्यान रहे बीज को टूटने न दें।

उपज : वर्षा आधारित क्षेत्रों में 15-30 क्विं./हैक्टेयर एवं सिंचित क्षेत्रों में 30-40 क्विं./हैक्टेयर

तालिका 1. हरियाणा में अरंड की खेती का प्रति हैक्टेयर आर्थिक विश्लेषण

विस्तृत ब्यौरा	रेवाड़ी	सिरसा	हिसार	औसत
कुल अस्थाई लागत	41680	46263	47507	46075
कुल स्थाई लागत	54807	50451	50664	51337
कुल लागत	96487	96713	98171	97412
मुख्य उत्पाद (क्विंटल)	31.43	28.00	28.80	29.02
मूल्य प्रति क्विंटल	5021	4925	4943	4953
सकल लाभ	157811	137913	142371	143743
परिवर्तनीय लागत पर आय	116131	91650	94864	97668
शुद्ध लाभ	61324	41200	44200	46331
आय लागत अनुपात	1.64	1.43	1.45	1.48

अरंड की खेती एक लाभदायक फसल है। हरियाणा के तीन ज़िलों के 60 किसानों का आर्थिक विश्लेषण किया तो पाया शुष्क व बारानी क्षेत्रों के लिए अरंड की खेती अन्य फसलों की तुलना में अधिक लाभदायक है। हरियाणा में ज़िले अनुसार अरंडी की खेती का प्रति हैक्टेयर आर्थिक विश्लेषण तालिका 1 में दर्शाया गया है। जिसके अनुसार कुल लागत क्रमश: रुपये 96487, 96713, 98171 और 97412 रेवाड़ी, सिरसा, हिसार व औसत है। अरंडी का उत्पादन प्रति हैक्टेयर क्रमश: 31.43, 28.00, 28.80 और 29.02 किवंटल पाया गया तथा औसत मूल्य 4953 रुपए था। अध्ययन मे शुद्ध लाभ क्रमश: 61324, 41200, 44200 और 463331 प्रति हैक्टेयर है। इसके अतिरिक्त आय लागत अनुपात जिसका मतलब हुआ कि एक रुपया खर्च करने पर क्रमश: 1.64, 1.43, 1.45 और 1.48 रुपये प्राप्त होंगे। इससे यह निष्कर्ष निकलता है अरंड की फसल उगाना लाभदायक है।

फसलों का आय व लागत प्रति हैक्टेयर का वार्षिक तुलनात्मक अध्यन किया गया जो कि तालिका 2 में दर्शाया गया है।

तालिका 2. फसलों का आय व लागत प्रति हैक्टेयर का वार्षिक तुलनात्मक अध्ययन

फसलें	कुल लागत	सकल लाभ	शुद्ध लाभ	आय लागत अनुपात
अरंड	97412	143743	46331	1.48
कपास+सरसों	129565	160113	30548	1.24
ग्वार+सरसों	90008	110683	20675	1.23
कपास+गेहूं	162235	197913	35678	1.22
ग्वार+गेहूं	122678	148483	25805	1.21
कपास+जौ	123393	147600	24208	1.20
बाजरा+गेहूं	124983	145983	21000	1.17
बाजरा+सरसों	92313	108183	15870	1.17
ग्वार+जौ	83835	98170	14335	1.17
बाजरा+जौ	86140	95670	9530	1.11

यह आर्थिक विश्लेषण 2018-19 द्वारा सर्वेक्षण पर निर्धारित है

अध्ययन में पाया गया कि शुष्क व बारानी क्षेत्रों के लिए अरंड की खेती अन्य फसलों की तुलना में अधिक लाभदायक है। अध्ययन में पाया गया कि वार्षिक फसल चक्र शुद्ध लाभ क्रमश: अरंड (रुपये 46331), कपास+सरसों (रुपये 30548), ग्वार+सरसों (रुपये 20675), कपास+गेहूं (रुपये 35678), ग्वार+गेहूं (रुपये 25805), कपास+जौ

(शेष पृष्ठ 8 पर)

कपास के कीड़ों का एकीकृत प्रबंधन

- **मीनू एवं योगिता बाली**
कृषि विज्ञान केंद्र, भिवानी
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

1. बीज को भंडारण के समय एल्युमिनियम फॉस्फाइड (सल्फॉस) की एक टिकिया (3 ग्राम) प्रति घन मीटर क्षेत्र की दर से 48-72 घंटे तक धूमृत करें इससे बीज में छिपी गुलाबी सूंडियां नष्ट हो जाएंगी।
2. अप्रैल-मई में गहरी जुताई करें व पिछली फसल की जड़ों एवं डंठलों को एकत्रित कर नष्ट कर दें।
3. जल्दी तैयार होने वाली सिफारिश की गई किस्में बोएं।
4. बिजाई संभवत 15 मई तक पूरी कर लें।
5. खाद का संतुलित प्रयोग करें। सिफारिश अनुसार नत्रजन, फॉस्फोरस, पोटाश एवं ज़िंक खादों का प्रयोग करें। नत्रजन वाली खाद अधिक डालने से कीड़ों का प्रकोप अधिक होता है।
6. दीमक के प्रकोप से बचाव के लिए बीज को 10 मि. ली. क्लोपायरिफॉस 20 ई. सी. प्रति किलो बीज की दर से उपचारित करें। 10 मी. ली. क्लोपायरिफॉस में 10 मि. ली. पानी मिलाकर उस सफेद घोल से एक किलो भिगोये हुये बीज को उपचारित करें। उपचारित बीज को 30 मिनट तक छाया में सुखाकर बोएं।
7. खेतों में निराई-गुड़ाई आवश्यकतानुसार करें ताकि घास-फूस नष्ट हो जाएँ क्योंकि घासफूस पर कई कीड़े आश्रित रहते हैं।
8. चित्तीदार सूँडी लगी, झुकी व सूख रही टहनियों तथा गुलाबनुमा फूलों को सप्ताह में दो बार काटें तथा इकट्ठा करके नष्ट कर दें ताकि कलियों व टिंडों पर चित्तीदार सूँडी व गुलाबी सूँडी का आक्रमण कम हो। चित्तीदार व गुलाबी सूँडी से प्रभावित कलियों, फूलों व टिंडों (गिरे व पोधों पर लगे हुए) को इकट्ठा कर गहरा दबा दें या नष्ट कर दें। अमेरिकन सूंडियों को इकट्ठा करके कीटनाशक मिश्रित पानी में डुबो दें।
9. मिलीबग के प्रभावकारी नियंत्रण के लिए खेतों के आस-पास व खालों/नालों/राजबाहों के किनारे उगने वाले ऊपर बताए गए परपोषी पोधों को नष्ट कर दें अथवा काट कर गहरा दबा दें। मार्च-अप्रैल में कपास के ठूंठों से हुये फुटाव व खेत में पड़े छंटियों के ढेरों के नीचे पड़े कचरे को नष्ट कर दें।
10. कातरा व अन्य कीड़ों के अंडे व सूंडियों तथा मरोड़िया बीमारी से प्रभावित पत्तों/पोधों को कीड़ों सहित तोड़कर गहरा दबा दें या नष्ट कर दें।
11. हर खेत में नियमानुसार (15 अगस्त तक हर सप्ताह तथा बाद में सप्ताह में 2 बार) 10 पौधों का निरीक्षण करें तथा देखें कि वे कौन-कौन से तथा कितने कीड़ों एवं परजीवियों से प्रभावित हैं। चुने हुये पौधों पर कीड़ों की गिनती करें तथा संख्या आर्थिक कगार पर पहुँचते ही सिफारिश की गई कीटनाशकों का विधिवत छिड़काव करें तथा बाद में भी फसल पर कीड़ों का सर्वेक्षण जारी रखें।
12. बी.टी. कपास पर रस चूसने वाले कीड़ों का प्रकोप प्राय: अधिक होता है। अत: इनके नियंत्रण का विशेष ध्यान रखें। परंतु इस पर अमरीकन सूँडी, चित्तीदार सूँडी व गुलाबी सूँडी का प्रकोप बहुत कम होता है। फसल पकने के समय अर्थात अक्तूबर महीने में गुलाबी सूँडी का प्रकोप हो सकता है। अत:आवश्यकतानुसार कीटनाशकों का छिडकाव करें।

कपास लेने के बाद कीट नियंत्रण के उपाय

1. कपास की फसल की कटाई के बाद बहुत से कीड़े तथा उनके शिशु

प्रमुख कीड़ों का आर्थिक कगार

कीड़ा	अवस्था	आर्थिक कगार	आधार
हरा तेला	शिशु	दो या इससे अधिक शिशु प्रति	पत्ता 30 पत्तों की निचली सतह पर गिनती करें
सफेद मक्खी	प्रौढ़	आठ प्रौढ़ प्रति पत्ता सुबह पत्ते चमकते/ तैलीय/चिपचिपे दिखाई	30 पत्तों की निचली व ऊपरी सतह पर गिनती करें
दीमक	10% पौधे प्रभावित	–	एक-एक मीटर की 30 कतारों में कुल एवं प्रभावित पौधों की गिनती करें।
कातरा व अन्य पत्ते खाने वाले कीड़े	–	एक सूँडी प्रति पौधा	30 पौधों का निरीक्षण करें।
चित्तीदार सूँडी	प्रभावित टहनी	1% प्रभावित टहनियाँ	30 पौधों की सभी टहनियों का निरीक्षण करें।
	फलीय भाग	55% प्रभावित फलीय भाग (गिरे हुये एवं पौधों पर)	20 पौधों के (गिरे हुये एवं पौधों पर) फलीय भागों का निरीक्षण करें।
अमेरीकन सूँडी	फलीय भाग सूँडी	5% फल प्रभावित	20 पौधों के सभी फलीय भाग देखें।
		0.5 सूंडी प्रति पौधा	20 पौधों पर 10 सूंडियाँ
गुलाबी सूँडी	प्रौढ़/नर	5 प्रौढ़ प्रति ट्रैप/रात (जून से मध्य अगस्त)	फिरोमोन ट्रैप 60x60 मीटर की दूरी पर लगाएँ।
		8 प्रौढ़ प्रति ट्रैप/रात (मध्य अगस्त से अक्तूबर)	(4-5 ट्रैप प्रति हैक्टेयर) तीन रातों केआर पकड़ की औसत निकालें।

ज़मीन के अंदर ज़मीन पर गिरे पत्तों, पौधे के अन्य भागों तथा पौधों पर बचे अधखिले, अनखिले टिंडों तथा खोखड़ियों में छिपे रह जाते हैं। ये कीड़े अगली फसल के लिए खतरनाक होते हैं। इनकी सामूहिक रोकथाम के लिए निम्नलिखित उपाय अपनाए जा सकते हैं।

2. आखिरी चुनाई के बाद खेतों में भेड़-बकरियों व अन्य पशुओं को चराएँ ताकि पौधों पर लगे अधखिले व अनखिले टिंडों को ये जानवर खाकर खतम कर दें।
3. कपास की मोड्डी फसल कभी न रखें। छंटियों की कटाई ज़मीन की सतह तक करें और ठूँठों को निकालकर खतम कर दें ताकि पौधे दोबारा न उग सकें। पुराने पौधों को जितना जल्दी हो सके उखाड़ कर फेंक दें।
4. कपास की छंटियों को खेत में न रखकर खेतों से दूर रखें। मार्च के महीने तक सभी छंटियों को अच्छी तरह से झाड़ लें और टिंडे, खोखड़ी व अन्य कचरे को इक्ट्ठा करके नष्ट कर दें।
5. कपास के खेतों में गहरा हल चलायें, पानी लगाएँ तथा रबी की फसल बोएं।
6. खाली खेतों में फरवरी के अंत में खुड्कार हल से गहरी जुताई करें। इससे ज़मीन में छिपी सूंडियां बाहर निकल आएंगी व जो पक्षी व अन्य जीव जंतुओं के लिए भोजन का काम करेंगी या गर्मी/सर्दी की वजह से मर जाएंगी। अप्रैल-मई के महीने में गहरी जुताई अवश्य करें।
7. खेतों में तथा आस-पास खरपतवारों को न पनपने दें क्योंकि ये कीड़े व बीमारियों को बढ़ावा देते हैं। भिंडी की खेती कपास के खेतों के पास नहीं करनी चाहिए क्योंकि यह भी सफेद मक्खी, मिली बग व अन्य कीड़ों को बढ़ावा देती है। ।

दाना मटर : सिफारिश की गई उन्नत किस्में

- ज्योति
अनुवांशिकी व पौध प्रजनन विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

हरियाणा राज्य के कई इलाकों में अधिक सिंचाइयां तथा जलस्तर ऊंचा होने के कारण चने की फसल नहीं उगाई जा सकती। ऐसे इलाकों में मटर को सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। सिंचाई की सुविधा के अनुसार इसे कई इलाकों जैसे, रिवाड़ी, महेन्द्रगढ़, सोनीपत, पश्चिमी क्षेत्र व ज़िला जींद के नरवाना तथा फरीदाबाद के पलवल तहसीलों में लगाया जा सकता है। दाना मटर की सिफारिश की गई उन्नत किस्में इस प्रकार हैं:

अपर्णा, एच एफ पी 4 (Aparna,HFP4) : इसे हरियाणा राज्य के सिंचाई वाले क्षेत्रों में सिफारिश किया जाता है। यह किस्म बौनी तथा बिना पत्तों वाली है। यह न गिरने वाली किस्म है। यह किस्म पाऊडरी मिल्ड्यू रोग के प्रति सहनशील है। इसकी पैदावार पर पत्तों में सुरंग बनाने वाले कीड़ों का असर नहीं होता है। दाने मध्यम मोटे होते हैं। इसकी फलियां देर से विकसित होती हैं जिस कारण इस किस्म पर पाले का असर नहीं पड़ता। इसकी पैदावार की क्षमता 14 क्विंटल/एकड़ से अधिक है। इसकी औसत पैदावार 10 क्विंटल/एकड़ है।

जयन्ती, एच एफ पी 8712 (Jayanti, HFP8712): यह अपर्णा से लम्बी बढ़ने वाली पत्ता रहित व बौनी किस्म है। इसके पौधे सीधे बढ़ते हैं परन्तु अगर जगह मिले तो फैल जाते हैं। फलियां हरी व लम्बी होती हैं। दाने मीठे व स्वादिष्ट होते हैं और इसी कारण से यह सब्जी के लिए भी उपयुक्त है। इसमें रतुआ व उखेड़ा बहुत कम लगता है तथा यह किस्म सफेद चूर्ण, जिसे पाऊडरी मिल्ड्यु भी कहते हैं, के लिए रोगरोधी है।इसका दाना हरा-सा सफेद, मोटा तथा गड्ढे वाला होता है। यह सिंचित क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है तथा 125-130 दिनों में पक कर तैयार हो जाती है। इसकी औसत पैदावार 11 क्विंटल/एकड़ है।

उत्तरा, एच एफ पी 8909 (Uttara, HFP 8909)**:** यह किस्म काश्त के लिए समस्त उत्तरी - पश्चिमी भारत के मैदानी भागों (हरियाणा सहित) में अनुमोदित की गई है। इस किस्म के पौधे हल्के हरे, सीधे बढ़ने वाले, पत्ती रहित तथा बौने होते हैं। दानों का रंग क्रीम होता है तथा गोल और मध्यम आकार के होते हैं। इसकी औसत उपज 10-12 क्विंटल/एकड़ है तथा यह 131 दिनों में पक जाती है। इसे सिंचित क्षेत्रों में सिफारिश किया जाता है।

हरियल, एच एफ पी 9907 बी (Haryal, HFP9907B) **:** यह किस्म 128 दिनों में पक कर तैयार हो जाती है। यह किस्म लम्बी फलियां व हरे बीज वाली है। यह किस्म बीमारियों जैसे पाऊडरी मिल्ड्यू, जड़ गलन एवं रतुआ तथा जड़ गांठ वाले सूत्रकृमि की प्रतिरोधी है। इस किस्म की औसत पैदावार 10-12 क्विंटल/एकड़ है।

एच एफ पी 9426 (HFP 9426)**:** यह किस्म अधिक पैदावार वाली तथा पाऊउरी मिल्ड्यू रोग रोधी है। इसके दाने मोटे, गोल चमकीले तथा हरे होते हैं तथा यह मध्यम लम्बी बढ़ने वाली किस्म है। यह पकने के लिए 131 दिनों का समय लेती है। इस किस्म की औसत पैदावार 10 क्विंटल/एकड़ है। इसका दाना आकर्षक होने के कारण बाज़ार में अच्छे भाव में बिकता है।

6 एच एफ पी 529 (HFP 529): यह किस्म हरियाणा सहित समस्त उत्तरी-पश्चिमी भारत के मैदानी भागों में काश्त के लिए सिफारिश की गई

(शेष पृष्ठ 9 पर)

कपास की फसल में लगने वाले रोग : लक्षण एवं नियंत्रण

- **मनमोहन, ममता एवं ओमेंद्र सांगवान**
कपास अनुभाग, आनुवंशिकी एवं पौध प्रजनन विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

अन्य फसलों की भांति कपास की फसल में भी बहुत सी बीमारियां लगती हैं जो अनुमानित 10-20 प्रतिशत फसल को हानि पहुंचाती हैं। पत्तों पर लगने वाले रोगों में पत्ता मरोड़ रोग मुख्य है। इसके पश्चात् कोणदार धब्बों का जीवाणु रोग भी महत्वपूर्ण है। जड़ में लगने वाले रोगों में जड़ गलन तथा झुलसा रोग मुख्य हैं। इसके अतिरिक्त टिण्डा गलन जोकि फफूंद, जीवाणु तथा कीड़ों द्वारा उत्पन्न होता है, अधिक बरसात में एक महत्वपूर्ण समस्या का रूप धारण कर लेता है। इसलिए यह अति आवश्यक है कि इन रोगों की सही पहचान कर उचित रोकथाम की जा सके। इस लेख में कपास के पत्तों पर लगने वाले मुख्य रोग व उनकी रोकथाम के उपाय दिए गए हैं।

1. पैराबिल्ट : यह वर्तमान समय में कपास का मुख्य रोग है। यह समस्या आमतौर पर अगस्त से अक्तूबर महीनों के बीच आती है। इसका मुख्य कारण लम्बे समय तक सूखा रहने के पश्चात् सिंचाई देना व वर्षा का होना है। रेतीली ज़मीन में इसका अधिक प्रकोप होता है। इस समस्या के कारण पौधों के पत्ते अचानक मुरझा जाते हैं और पौधे शीघ्र सूखने लगते हैं लेकिन पौधे की जड़ें सामान्य रहती हैं और इसमें कोई रोगाणु शामिल नहीं होता। इस समस्या के लक्षण दिखाई देने के 48 घंटों के अन्दर कोबाल्ट क्लोराइड 2.0 ग्राम/200 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति एकड़ छिड़काव करें।

2. माइरोथिसियम पत्ता छेदक धब्बा रोग : यह रोग माइरोथिसियम रोडीडम नामक फफूंद से होता है। इस रोग के प्रमुख लक्षण रोगी पत्तों पर लाल बैंगनी झलक लिए हल्के-भूरे रंग की फफूंद की बिन्दियों वाले धब्बे दिखाई पड़ते हैं। आरम्भ में इन धब्बों का आकार पिन के सिर जैसा होता है। प्रकोप की अवस्था में धब्बे आपस में मिल जाते हैं। प्राय: रोग ग्रस्त भाग पत्तों से गिर जाते हैं। इससे पत्तों में छेद हो जाता है। ऐसे ही लक्षण फल (टिण्डे) के नीचे की छोटी पत्ती और कभी-कभी टिण्डों पर नज़र आते हैं।

3. पत्ता मरोड़ रोग: यह कपास का सबसे मुख्य रोग है। सबसे पहले ऊपर की कोमल पत्तियों पर इसका असर दिखाई पड़ता है, पत्तियां ऊपर की तरफ मुड़ कप जैसी आकृति की हो जाती हैं और कहीं-कहीं पर पत्तियों की निचली तरफ नसों पर पत्ती की आकार की बढ़वार भी दिखायी देती है। ऐसे पौधे छोटे रह जाते हैं, इन पर फूल, कली व टिण्डे नहीं लगते, इनकी बढ़वार एकदम रुक जाती है और इसका उपज पर बहुत विपरीत असर पड़ता है। यह रोग एक जैमिनी विषाणु द्वारा होता है। सफेद मक्खी इस रोग को फैलाने में सहायक है। बीज, ज़मीन या छुआ छूत द्वारा यह रोग नहीं फैलता है। यह रोग पौधे की किसी भी अवस्था में आ सकता है। इस रोग से 80-90 प्रतिशत तक फसल में नुकसान हो सकता है। यदि यह रोग फसल की प्रारम्भिक अवस्था में आ जाए तो ज़्यादा नुकसान होता है और फसल की पछेती अवस्था में आए तो पैदावार पर लगभग कोई फर्क नहीं पड़ता।

जब यह रोग ज़्यादा हो वहां पर देसी कपास बोई जाए क्योंकि देसी कपास में यह रोग नहीं लगता। सफेद मक्खी का पूर्ण रूप से नियन्त्रण

(शेष पृष्ठ 9 पर)

गुलाब की खेती: एक लाभदायक विकल्प

- **राजेश लाठर, वंदना एवं रविंदर सिंह**
कृषि विज्ञान केंद्र, पंचकूला
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

वैश्विक फूलों की खेती में गुलाब प्रमुख फूलों में से एक है। इसका उपयोग लगभग हर कार्यक्रम में किया जाता है। गुलाब के फूल आकार में भिन्न होते हैं और विभिन्न रंगों में उपलब्ध हैं। गुलाब मूल रूप से एशिया महाद्वीप से है। गुलाब की पंखुड़ियों के कई औषधीय लाभ हैं। इसके उत्पादों का उपयोग तनाव और डिप्रेशन में राहत के लिए किया जाता है।गुलाब का उपयोग गुलकंद तैयार करने के लिए किया जाता है और गुलाबजल का उपयोग सौन्दर्य उत्पादों में किया जाता है। महाराष्ट्र, तमिलनाडु, बिहार, कर्नाटक, पश्चिम बंगाल, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, गुजरात, जम्मू और कश्मीर, पंजाब और आंध्र प्रदेश प्रमुख गुलाब उगाने वाले राज्य हैं। आजकल ग्रीनहाऊस खेती अधिक लोकप्रिय हो रही है और ग्रीनहाऊस में गुलाब की खेती लाभदायक है क्योंकि इसमें खुले क्षेत्र की तुलना में उच्च गुणवत्ता के फूलों का उत्पादन होता है।

जलवायु : बुवाई के समय इसे 25-30 डिग्री सैंटीग्रेड के बीच तापमान की आवश्यकता होती है और वर्षा 200-300 मिमी पर्याप्त है।

मिट्टी : जैविक पदार्थों से भरपूर रेतीली दोमट मिट्टी गुलाब की खेती के लिए उपयुक्त है। अच्छी वृद्धि के लिए इसे 6-8 के पी एच की आवश्यकता होती है। यह जलभराव की स्थिति के लिए काफी संवेदनशील है, इसलिए जल निकासी प्रदान करें और अतिरिक्त पानी की निकासी करें।

किस्म:

जाति	फूल का रंग	किस्म
हाइब्रिड -टी	सफेद	जवाहर, राजहंस
	गुलाबी	प्रेजिडेंट, एफैन टावर
	गहरा लाल	रक्तगंधा, क्रिमसन ग्लोरी
	नीला	ब्लू मून, ब्लू डिलाइट
	नारंगी	सुपर स्टार , मोटेजुमा
फ्लोरिबून्दा	सफेद	आइस बर्ग, चन्द्रमा
	पीला	सोनोरा, सी पर्ल
	गुलाबी	अरुणिमा, क्वीन
पोलिएंथा		ललअंजना, रेशमी
	गुलाबी	नर्तकी, स्वाति
मिनिएचर	लाल	डार्क ब्यूटी
	गुलाबी	डेसलेट, क्राई क्राई
	पीला	देहली स्कारलेट
लता रोज़		सफेदछेहली वाइट , पर्ल
	गुलाबी	स्नोगर्ल, डोरथो पार्किन

भूमि की तैयारी : गुलाब की खेती के लिए रोपाई के चार सप्ताह पहले शय्या तैयार करें। दो गड्ढों के बीच की दूरी 60-90 सै.मी. होनी चाहिए और गड्ढे की गहराई 60-75 सैं.मी. होनी चाहिए। गड्ढे को 5 किलोग्राम अच्छी तरह से सड़ी-गली गोबर की खाद और 20 मिली लीटर क्लोरपायरीफॉस को दस लीटर पानी में मिलाकर भरें और फिर गड्ढों की सिंचाई करें। शय्या या बेड पर गुलाब उगाना गड्ढों में लगाने से ज़्यादा लाभदायक है। बड़े क्षेत्र में गुलाब लगाने के लिए, पौधे लगाने के एक महीने पहले 60 सैं.मी. चौड़ी और 60 सैं.मी. गहरी नाली खोदें। इस नाली

को गोबर की खाद और क्लोरपायरीफॉस के साथ उक्त अनुपात में भरें और फिर नालीको सींचें।

नर्सरी रोपण : रोज़ा बारबोनियाना, रोज़ा इंडिका और रोज़ा मल्टीफ्लोरा जैसे रूटस्टॉक्स की कटिंग बेड पर 10-15 सैं.मी. की दूरी पर लगाई जाती है। अच्छे और स्वस्थ पौधों से कलियाँ लेकर जनवरी से फरवरी में बडिंग की जाती है।

बुवाई का समय : उत्तरी राज्यों के लिए मध्य अक्तूबर से नवंबर गुलाब की खेती के लिए सबसे अच्छा समय है। 60-75 सैं.मी. की दूरी पर रोपाई करें। रोपण के बाद छाया प्रदान करें, अगर तेज़ धूप हो तो पौधे पर पानी का छिड़काव करें। दोपहर के बाद गुलाब लगाने से बेहतर परिणाम मिलते हैं।

बुवाई की विधि : तीन विधियाँ हैं - डायरेक्ट सीडलिंग, स्टेम कटिंग और टी- बडिंग द्वारा।

वंश-वृद्धि : यह कटिंग या बडिंग के माध्यम से ब्रिअर रूटस्टॉक पर की जाती है। उत्तरी क्षेत्र में जनवरी-फरवरी टी-बडिंग के लिए आदर्श समय है।

छंटाई : रोपाई के बाद दूसरे वर्ष में छंटाई व कटाई करें और उसके बाद के वर्षो में नियमित रूप से यह क्रिया करें। उत्तर भारत में गुलाब की झाड़ियों को सितंबर मध्य से अक्तूबर के मध्य में ज़मीन के स्तर से 30 सैं. मी. ऊपर छंटाई की जाती है। पाँच-छः टहनी प्रति पौधों के साथ 4-5 कलियां प्रति टहनी रखें और मृत, रोगग्रस्त, सूखी और क्षतिग्रस्त टहनी और पत्तियों को काटें। मिनिएचर, पोलिएंथा और लता गुलाब को छंटाई की आवश्यकता नहीं है। कटाई व छंटाई के बाद 7-8 किग्रा गोबर की खाद प्रति पौधा की दर से डालें और मिट्टी में अच्छी तरह मिलाएं।

उर्वरकों का उपयोग : गोबर की खाद, पोटाश व फास्फोरस की पूरी मात्रा तथाआधा नाइट्रोजन सितंबर- अक्तूबर में छंटाई के बाद डालें। एक महीने बाद नाइट्रोजन की शेष आधी खुराक डालें। फूल उत्पादन बढ़ाने के लिए, प्रूनिंग के एक महीने के बाद GA3@ 0.2 ग्राम/लीटर पानी का छिड़काव करें। बसंत के मौसम में गुलाब उत्पादन बढ़ाने के लिए जनवरी में 10 ग्राम नाइट्रोजन और 10 ग्राम पोटाश प्रति पौधे का उपयोग करें। नवंबर और फरवरी में सूक्ष्म पोषक तत्वों ज़िंक /सल्फर/ मैंगनीज़ का 3 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करें।

सिंचाई : गर्मी में 5 दिन के अंतराल पर और सर्दियों में 10 दिनों के अंतराल पर फसल की सिंचाई करें। बरसात के मौसम में अतिरिक्त पानी को बाहर निकालें। टपका सिंचाई जैसी आधुनिक सिंचाई तकनीक गुलाब की खेती के लिए उपयोगी है। पत्ती रोग के संक्रमण की संभावना को कम करने के लिए फव्वारा सिंचाई प्रणाली से बचें।

खरपतवार प्रबंधन : चौड़ी पती वाले खरपतवारों के लिए ग्लाइफोसेट /300 ग्राम/एकड़ तथा संकर पती वाले खरपतवारों के लिए ऑक्जेफ्लोरोफेन/200 ग्राम/एकड़ का प्रयोग पूर्व-अंकुरण के रूप में करें।

पौधों की सुरक्षा

कीट : यदि तेला, चेपा और लीफ हॉपर का संक्रमण देखा जाता है, तो मिथाइल डेमेटन 25 EC @ 2 मिली / लीटर पानी या कार्बोफ्यूरान 3 जी / 5 ग्राम / पौधा के साथ फसल पर स्प्रे करें। इल्ली के लिए मेथोमिल / 1 मिली प्रति लीटर पानी, स्टीकर के साथ मिलाकर छिड़काव करें।

रोग

डायबैक : यह एक आम बीमारी है और अगर इसे ठीक से नियंत्रित नहीं किया जाता है, तो पैदावार में बहुत कमी आती है। पौधे काले पड़ने लगते हैं और ऊपर से नीचे की ओर सूखने लगते हैं और अंत में पौधे मर जाते हैं। इस रोग का प्रबंधन करने के लिए पौधे के रोगग्रस्त भाग को काटें और बैविस्टीन/2 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से डालें। क्लोरोथालोनिल /2 ग्राम और टीपोल /0.5 मिली प्रति लीटर पानी की दर से फसल पर छिड़काव करें।

पत्ते का धब्बा रोग : यदि पत्तियों पर काले धब्बे दिखाई देते हैं, तो ब्लाइटॉक्स / 2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करके इसका प्रबंधन करें। 7 दिनों के बाद स्प्रे दोहराएं। फव्वारा सिंचाई से बचें।

कटाई : आर्थिक उपज आमतौर पर दूसरे वर्ष से प्राप्त की जाती है। कटाई तब की जाती है जब फूलों का रंग पूरी तरह से विकसित हो जाता है और पहली एक या दो पंखुड़ियां खुलने लगती हैं लेकिन पूरी तरह से नहीं खुलती हैं। कटाई निर्धारित डंठलों की लंबाई के साथ कैंची से की जाती है। विदेशी मानकों के अनुसार, बड़े फूलों के डंठलों की लंबाई 60-90 सैं. मी. और छोटे फूलों के लिए 40-50 सैं.मी. होनी चाहिए। कटाई सुबह या देर शाम को की जाती है।

कटाई के बाद रख-रखाव : कटाई के तुरंत बाद फूलों को प्लास्टिक की बाल्टियों / कंटेनरों में रखें जिनमें ताज़ा पानी और कीटाणुनाशक हों। फिर फूलों को 10-12 घंटे प्री-कूलिंग चैंबर्स में रखें, जिसमें 10°C का तापमान हो। उसके बाद तने की लंबाई और गुणवत्ता के आधार पर फूलों को वर्गीकृत किया जाता है। 20 फूलों के बंडल को अखबार में लपेटें और बाज़ार में भेजने से पहले 100 ' 50 ' 7 सैं.मी. के माप के कार्ड बोर्ड बक्से में पैक करें। ।

(पृष्ठ 5 का शेष)

(रुपये 24208), बाजरा+गेहूं (रुपये 21000), बाजरा+सरसों (रुपये 15870), ग्वार+जौ (रुपये 14335), बाजरा+जौ (रुपये 9530)। जिसमें देखा गया कि अकेली अरंड की फसल का शुद्ध लाभ सभी वार्षिक फसलों से अधिक पाया गया।

अत: यह निष्कर्ष निकलता है कि शुष्क व बारानी क्षेत्रों में एक या दो पानी उपलब्ध हैं तो अरंड की खेती बहुत लाभदायक सिद्ध हो सकती है। अगर किसान अरंड की बिजाई लाइनों मे दूरी को 5 से 8 फीट तक बढ़ाकर शुरू के 4-5 महीने तक अन्त: फसलों के साथ करता है तो अरंड की खेती बहुत ही कामयाब एवं लाभप्रद पाई गई है। अरंड के साथ मूँग, ग्वार, मूँगफली, तिल, मोठ, सब्जियाँ (टमाटर, मिर्च एवं अगेती मेथी, धनिया, मूली, गाजर) आदि की अन्त: फसल पद्धति प्रचलित है। अरंड की खेती से अकेले ही किसान वर्षभर में अन्य पारंपरिक फसलों से ज़्यादा शुद्ध लाभ ले सकते हैं। अन्त: फसलों के साथ खेती से मुनाफा और भी बढ़ जाता है और नगद पैसा जल्दी मिल जाता है।

मण्डी करण : अरंड के तेल की निर्यात माँग एवं घरेलू खपत के कारण इसके भाव में निरन्तर वृद्धि हो रही है। अन्त: बिक्री आसानी से हो जाती है। सही बिक्री मूल्य पाने के लिए फिलहाल राजस्थान के नोहर-भादरा व हरियाणा के आदमपुर, हिसार व सिरसा में उचित मंडी व्यवस्था है। परंतु पैदावार गुजरात में बेचना भी लाभप्रद है। कुछ किसान ऊंचे भाव में अरंड की बिक्री गुजरात में करते हैं। ।

सदाबहार की खेती

- **राजेश कुमार आर्य, वंदना एवं आर.पी. सहारण**
औषधीय, सगंध एवं क्षमतावान फसल संभाग
अनुवांशिकी एवं पौध प्रजनन विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

सदाबहार (*केथेरन्थस रोसीयस*) एक बहुवर्षीय पौधा है जो ढाई से तीन फुट ऊँचा तथा सीधा बढ़ता है। इसका तना हल्का बैंगनी व हरा दोनों रंगों में पाया जाता है। इसके फूल गुलाबी, सफेद तथा केन्द्र में गुलाबी या सफेद भंवरे वाले होते हैं। इसके बीज काले तथा छोटे-छोटे होते हैं। इसके 1000 दानों का भार लगभग 1.2 ग्राम होता है।

यह भारत के अतिरिक्त इण्डोनेशिया, इंडोचायना, फिलीपींस, दक्षिण अफ्रीका, इजरायल, अमेरिका आदि देशों में फैला हुआ है। भारत मे इसे कर्नाटक, तमिलनाडु, आंध्रप्रदेश, मध्यप्रदेश, गुजरात तथा आसाम में उगाया जाता है। भूमि एवं जलवायु की दृष्टि से हरियाणा में भी इसकी खेती की जा सकती है।

उपयोग : सदाबहार एक बहुउपयोगी औषधीय पौधा है। इसकी जड़ों में एजमेलासीनल और रेसरपीन नामक एल्कलाइड्स होते हैं। जिनके कारण इसका प्रयोग उच्च रक्तचाप की रोकथाम के लिए होता है। इसकी पत्तियों में विनक्रीस्टीन व बिनब्लास्टीन तत्व पाये जाते हैं जो कि कैंसर व मधुमेह की रोकथाम के लिए कारगर हैं। इसे गर्भपात, जुलाब, मधुमेह मूत्रल आंव, मलेरिया, चर्मरोग, कैंसर आदि में प्रयुक्त किया जाता है।

भूमि एवं जलवायु : इसकी जड़ों की अच्छी पैदावार लेने के लिए हल्की से दोमट मिट्टी अधिक उपयुक्त है। वैसे इसे क्षारीय, लवणीय व बाढग्रस्त भूमि को छोड़कार किसी भी प्रकार की भूमि में उगाया जा सकता है। इसकी खेती के लिए गर्म व शुष्क मौसम अनुकूल रहता है। इसे सिंचित तथा बारानी दोनों दशाओं में उगाया जा सकता है।

बीज एवं बिजाई: बीज द्वारा इसकी बिजाई खेत में सीधी 30 सैं.मी. के अन्तर से पक्तियों मे की जा सकती है। जिसे 30-40 दिन के बाद पौधों की छंटाई करके 30 x30 सैं.मी. फासला रखा जा सकता है। इसके लिए लगभग एक किलो बीज प्रति एकड़ की आवश्यकता होगी जबकि नर्सरी में पौध तैयार करके खेत में रोपाई करने पर केवल 200 ग्राम बीज पर्याप्त रहता है। नर्सरी तैयार करने के लिए बीज की 200 वर्ग मीटर में बिजाई करें। नर्सरी मई-जून में तैयार करके पौध की रोपाई जुलाई-अगस्त में की जा सकती है।

खेत की तैयारी: खेत बिल्कुल समतल रखें ताकि पानी ज़्यादा देर तक न ठहर सके। खेत को इस प्रकार से तैयार करें कि इसकी मिट्टी भुरभुरी हो जाए तथा किसी प्रकार के ढेले न रहें।

खाद एवं सिंचाई: खेत को तैयार करते समय 10-12 टन प्रति एकड़ गोबर की अच्छी गली-सडी खाद ज़रूर डालें। इससे मिट्टी नरम रहेगी, पानी का संरक्षण होगा तथा जड़ों का विकास अच्छा होगा।

निराई-गुडाई : आरम्भ में खरपतवार निकालना बहुत ज़रूरी है इसलिए 1-2 निराई-गुडाई करके निकाल देने चाहिएं। अच्छी पैदावार के लिए आवश्यकतानुसार 5-6 सिंचाई समय-समय पर करें।

पत्तों की चुनाई : सालभर में, इसकी फसल से पत्तों की चुनाई 3 बार की जा सकती है। पहली 4 महीने पर, दूसरी 8 महीने पर तथा अन्तिम कटाई के समय। पौधों को ज़मीन से 15 सैं.मी. ऊपर से काटना चाहिये ताकि दुबारा फुटाव हो सके। पौधों को सुखा कर पत्तों की पैदावार भी लगभग 8-10 क्विंटल प्रति एकड़ हो सकती है।

जड़ों की पैदावार : जड़ निकालने के लिए, रोपाई के 10 महीने बाद फसल में उखाड़ने के लिए, खेत में सिंचाई करें तथा बत्तर आने पर पौधों को जड़ समेत उखाड़ें तथा जड़ों को पानी से अच्छी तरह से धोकर अलग सुखाया जाता है। सूखी जड़ों की औसत पैदावार 4-5 क्विंटल प्रति एकड़ आंकी गई है। ।

(पृष्ठ 7 का शेष)

रखें। कई प्रकार के खरपतवार भी इस रोग को फैलाने में सहायक हैं। इसलिए खेतों को, आसपास के क्षेत्रों को तथा नालियों आदि को बिल्कुल साफ रखना बहुत ज़रूरी है। भिण्डी पर भी यह रोग पाया जाता है। इसलिए जहां पर यह रोग लगता हो वहां पर भिण्डी की काश्त न करें। इस रोग की रोकथाम के लिए कोई भी फफूंदनाशक उपयोगी नहीं है।इसके बचाव के लिए कुछ सावधानियां बरतनी ज़रूरी हैं।

रोगरोधी किस्मों का प्रयोग :

- फसल की अगेती बिजाई
- खेत के आसपास खरपतवार को नहीं पनपने देना।
- सफेदमक्खी को नियंत्रण में रखना।

4. जीवाणु अंगमारी या कोणदार धब्बों का रोग : यह रोग पौधे के सभी भागों पर अपने लक्षण दिखाता है। इसके मुख्य लक्षण हैं टहनियों पर धब्बे, पत्तों पर कोनेदार धब्बे व टिण्डों पर भी धब्बे पाए जाते हैं। इस रोग के लक्षण पत्तों पर कोणदार जलसिक्त (पानीदार) धब्बों के रूप में नज़र आते हैं। ये गहरे-भूरे होकर किनारों से लाल या जामुनी रंग के हो जाते हैं व कभी-कभी आपस में मिले हुए होते हैं व तनों पर लम्बे या अण्डाकार काले रंग के धब्बे बनते हैं। प्रकोप की अवस्था में कोणदार धब्बे शिराओं के पास सिमट जाते हैं और इस प्रकार शिराएं काली पड़ जाती हैं जिससे कि पत्ता सिकुड़ जाता है और पीला पड़ कर गिर जाता है।

5. ग्रेमिल्ड्यू व दहिया रोग : यह रोग देसी कपास में लगता है जब फसल लगभग पक जाती है और अधिकतर कपास पहले ही चुन ली जाती है। मिल्ड्यू के धब्बे पुराने पत्तों की निचली सतह पर छोटे, अनियमित व सफेद कोनेदार दिखाई पड़ते हैं। रोग ग्रस्त पत्ते जल्दी ही गिर जाते हैं।

कपास के रोगों की सामूहिक रोकथाम

छिड़काव कार्यक्रम : बिजाई के 6 सप्ताह बाद अथवा जून के अन्तिम या जुलाई के पहले सप्ताह में स्ट्रैप्टो साइक्लिन (6-8 ग्राम प्रति एकड़) व कॉपर ऑक्सीक्लोराईड (600-800 ग्राम प्रति एकड़) को 150-200 लीटर पानी में मिलाकर 15-20 दिन के अन्तर पर लगभग चार छिड़काव करें। यदि गन्धक 10 कि.ग्रा./एकड़ धूड़ें या बाविस्टिन (2 ग्राम प्रति लीटर पानी) का छिड़काव करें तो देसी कपास के ग्रैमिल्ड्यू रोग पर नियन्त्रण पाया जा सकता है। ।

(पृष्ठ 6 का शेष)

है।इसके पौधे सीधे बढ़ते हैं तथा बौने होते हैं। इसके पौधे पकने के बाद भी नहीं गिरते। इस किस्म के दाने गोल (लगभग), क्रीम रंग के तथा मध्यम आकार के होते हैं। पौधे पाऊड़री मिल्ड्यू तथा रतुआ को सहन करने में सक्षम होते हैं तथा जड़ गांठ वाले सूत्रकृमि के प्रतिरोधी हैं। इसकी फलियां मध्यम लम्बी हैं तथा यह किस्म अधिक उत्पादन वाली है। यह 123-125 दिनों में पक जाती है। इस किस्म की औसत पैदावार 11-12 क्विंटल/एकड़ है। यह किस्म सिंचित क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है। ।

चुकन्दर - एक बहुउद्देशीय व बहुउपयोगी फसल

- हर्षिता सिंह, सूर्यपाल सिंह[1] एवं सज्जन सिंह[2]
सब्जी विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

किसानी को लाभकारी व्यवसाय बनाना है तो कम समय में अधिक लाभ देने वाली फसलों पर किसानों को अपना ध्यान केन्द्रित करना होगा। चुकन्दर एक बहुउद्देशीय व बहुउपयोगी फसल है। सब्जी और चारा के साथ-साथ सलाद के रूप में शादी विवाह में अपना अलग स्थान व पहचान रखती है। चुकन्दर जड़ वाली सब्जियों में महत्वपूर्ण फसल है। इसकी अपनी विशेषता है। पहाडों से मरू क्षेत्र तक इसका उत्पादन बखूबी किया जा रहा है। विभिन्न प्रकार की मिट्टी दोमट बालुई या यूं कहिए कि सभी प्रकार की मिट्टी में चुकंदर का उत्पादन किया जा सकता है। चुकंदर को लवणीय क्षेत्रों में भी आसानी से उगाया जा सकता है। 6-7 पी.एच. मान की मिट्टी इसकी खेती के लिए उपयुक्त रहती है। चुकन्दर की खेती के लिए रेतीली भूमि की जुताई 2 से 3 बार करनी चाहिए। चिकनी मिट्टी की पहली जुताई पलटू हल से करें। हल चला कर सुहागे से समतल कर लें तथा मिट्टी को बिल्कुल भुरभुरी न करें। इसके बाद 5 इंच ऊँचा व 2 फीट चौड़ा बैड बनाकर सीधी बीज की बुवाई करें। बीज दर निर्धारण खेत में नमी और चुकंदर की किस्म के अनुसार तय करें। साधारणत: 4 से 6 किलोग्राम प्रति एकड बीज की आवश्यकता पडती है। प्रति एकड 3000 से 4000 पौधे 10 से 12 सैंटीमीटर की दूरी पर जिसमें लाईन की दूरी 25 से 30 सैंटीमीटर हो, पौधे वृद्धि के अनुकूल हैं। आमतौर पर बुवाई का समय अक्तूबर से नवम्बर तक उपयुक्त होता है। बुवाई से पहले पलेवा कर छोटी-छोटी क्यारियां बना कर लाईन में बिजाई करें। बीज को बोने से पहले पानी में 8-10 घन्टे भिगो कर छाया में सुखा लें और उसके बाद आधुनिक यन्त्रों या देसी हल से समतल खेत या तैयार किए हुए बैड पर बिजाई करें। बुवाई से पहले खेत तैयार करते समय 10-12 क्विंटल या प्रति एकड़ गोबर की खाद खेत में डालें। रासायनिक खादों का कम से कम उपयोग करें। अगर ज़रूरत पड़े तो यूरिया डी.ए.पी. और पोटाश 50, 70 और 40 कि.ग्रा. प्रति एकड प्रयोग कर सकते हैं। पानी की ज़रूरत मौसम पर निर्भर करती है। सर्दियों और बरसात में कम सिंचाई की ज़रूरत है। पहली सिंचाई बुवाई के 10-15 दिन, बाद में महीने भर पर सिंचाई करते रहना चाहिए। फसल तैयार होने पर फसल में नमी की मात्रा कम कर दें।

उद्देश्य

1. कम समय में अधिक उत्पादन : वैज्ञानिक विधि व सलाह से तैयार फसल में लगभग 65-90 टन प्रति हैक्टेयर चुकंदर का उत्पादन सम्भावित है। अनुकूल वातावरण व मिट्टी से उत्पादन अधिक होने की संभावना हमेशा रहती है। चुकंदर की उन्नत किस्मों जैसे- इग्लोपोली, ऐ. जे.पोली, ईरो टाइप ई, रोमांस काया, बी जे डब्लू-674, एम.एस.एच-9, यू एच-35 आदि के बीजों का वातावरण के अनुकूल प्रयोग कर अधिक उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं। किस्म का चुनाव क्षेत्र विशेष के अनुसार कृषि वैज्ञानिकों की सलाह से करें। स्थानीय कृषि विज्ञान केन्द्र के विषय विशेषज्ञ से सलाह-मशवरा अनिवार्य है। केवल उन्हीं किस्मों का उपयोग करें जो कम समय में तैयार हो कर अधिक उत्पादन दें। चुकंदर मात्र 90 दिन में पूरी तरह मण्डी में जाने के लिए तैयार हो जाता है और मण्डी में इसकी कीमत भी किसान को अच्छी मिलती है।

2. अधिक उत्पादन अधिक लाभ: जैसा कि उपर्युक्त में बताया गया है कि 90 दिन में 65-90 टन प्रति हैक्टेयर उत्पादन जोकि मांग और आपूर्ति के हिसाब से 1500 रुपये से लेकर 5000 रुपये प्रति क्विंटल बेची जा सकती है। लालपत्ती वाली चुकंदर की मांग आजकल पांच तारा होटल, बड़े-बड़े आयोजनों व शाही शादियों में होने के कारण इसके मूल्य में वृद्धि होना स्वाभाविक है। अत: मांग के अनुसार उत्पादन कर किसान इस सब्जी फसल से अधिक लाभ अर्जन कर सकते हैं।

3. परम्परागत फसल चक्र तोड़ना: देश के अनेक भागों में परम्परागत गेहूं-चावल चक्र वाली फसलें ही उगाई जाती हैं जिसके कारण धरती की उवर्रा शक्ति का हनन हुआ व क्षीण हुई। धरती में अन्धाधुन्ध रसायनिक खादों के उपयोग के कारण कार्बन की मात्रा कम हुई है। इस अवस्था में इस फसल चक्र को तोड़कर ऐसी फसलों को तलाशना होगा जो किसान कों इस फसल चक्र से होने वाले लाभ में अधिक लाभकारी है। चुकंदर उसी श्रेणी की एक बहुउपयोगी फसल है। जिसकी अधिक कीमत से किसान अधिक लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

4. खाद्य सुरक्षा : चुकंदर जड़ वाली सब्जियों में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। जैसा कि विदित है चुकंदर विभिन्न उद्देश्यों के लिए उगाई जाती है। इसका उपयोग मुख्यत: सलाद तथा जूस में किया जाता है। रेशा और रसायन इसमें प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं जोकि हमारे लिए उत्तम खाद्य है और हमें खाद्य सुरक्षा प्रदान करते हैं विशेष रूप से उन तत्वों के लिए जिनकी हमारे भोजन में दिन प्रतिदिन कमी होती जा रही है।

उपयोगिता

1. जन स्वास्थ्य: चुकंदर सलाद, सब्जी व जूस के रूप में आम व खास द्वारा दैनिक रूप में उपयोगी है। चुकंदर में चीनी 8 से 10 प्रतिशत, प्रोटीन 1.5 से 2 प्रतिशत, मैग्निशियम 3 से 5 प्रतिशत तथा अन्य तत्व जैसे कैल्शियम, फॉस्फोरस, आयरन, आयोड़ीन, मैंगनीज़, विटामिन बी और सी प्रचुर मात्रा में पाया जाता है इसलिए यह हमारे स्वास्थ्य के लिए उपयोगी है।

2. खाद्य : चुकंदर बारह महीने की खेती है जो हमें साल भर सब्जी, सलाद व अन्य व्यंजन देती रहती है। जब भी सब्जियों का अभाव होता है इसको उपयोग में लाया जा सकता है। अधिक उत्पादन की अवस्था में सुखा कर इसकी जड़ों का उपयोग किया जा सकता है। खुदाई बड़ी व मीठी जड़ों की करें तथा यह खुदाई एक समय में न कर बाज़ार की मांग के अनुसार करें। जिससे भण्ड़ारण की समस्या से निजात के साथ-साथ बाज़ार भाव भी किसान को अधिक मिलेगा और उपभोक्ता को ताज़ा व अच्छी गुणवत्ता वाली सब्जी उपलब्ध होगी। अधिक लाभ व मण्डी भाव लेने के लिए जड़ को कटने न दें व ग्रेडिंग व सफाई कर बाज़ार में भेजें।

3. चारा फसल : वर्षभर पशुओं के लिए हरा चारा उपलब्ध कराना एक बड़ी चुनौती है। खेत जोत कम होने के साथ-साथ चारा उत्पादन क्षेत्र में कमी इस समस्या को ओर गम्भीर बना देती है। इस अवस्था में चुकंदर एक विकल्प के रूप में बहुत उपयोगी है। आजतक चुकंदर को यूरोपीय देशों में पशुओं के चारे के रूप में प्रयोग किया जा रहा था। लेकिन चारे और चीनी की मांग ने चुकंदर फसल की ओर हमारे किसानों का ध्यान आकर्षित किया। आजकल इसका उत्पादन पंजाब, हरियाणा, राजस्थान,

(शेष पृष्ठ 11 पर)

[1]बीज विज्ञान विभाग, चौ. च. सिं. ह. कृ. वि., हिसार।
[2]केन्द्रीय भैंस अनुसंधान संस्थान, हिसार।

तिल उत्पादन : उन्नत कृषि क्रियाएं

- **रमेश कुमार, अशोक ढिल्लों एवं जयलाल यादव**
कृषि विज्ञान केन्द्र, महेन्द्रगढ़
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

भारत एक प्रमुख तिल उत्पादक देश है। विश्व में सबसे अधिक तिल की खेती भारत में होती है तथा पैदावार भी अन्य देशों की अपेक्षा अधिक है। तिल की खेती आमतौर पर कम उपजाऊ ज़मीन में कम खर्च करके होती है इसलिये इसकी औसत पैदावार कम है। भारत में तिल का कुल क्षेत्र 13.98 लाख हैक्टेयर है और कुल उत्पादन 4.18 लाख टन है। हरियाणा प्रदेश में तिल की खेती तीन हज़ार हैक्टेयर में होती है। राज्य में तिल की औसत पैदावार 1000 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर है जो देश की औसत पैदावार 470 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर से अधिक है, तो भी फसल की पैदावार क्षमता 1680 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर से काफी कम है। पैदावार क्षमता तथा औसत पैदावार के इस अन्तर को कम करने के लिये फसल उत्पादन की उन्नत कृषि क्रियाएं अपनाने की आवश्यकता है। अच्छी पैदावार के लिये किसानों को निम्नलिखित उन्नत कृषि क्रियाएं अपनानी चाहिएं:

उन्नत किस्म के बीज का चुनाव : अधिक पैदावार लेने के लिये किसानों को उन्नत किस्म के अच्छी गुणवत्ता के बीज का चुनाव करना चाहिये। तिल उत्पादक अधिकतर किसानों को तिल की उन्नत किस्मों का बीज उपलब्ध नहीं हो पाता जिसके कारण फसल की अच्छी पैदावार नहीं मिल पाती। चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय द्वारा विकसित तिल की उन्नत किस्मों का संक्षेप विवरण इस प्रकार है।

हरियाणा तिल नम्बर 1 (एच.टी. 1) : यह किस्म 85 दिन में पक जाती है तथा तिल की प्रमुख बीमारियां पत्ती मरोड़ व फायलोडी की प्रतिरोधी है। इसकी ऊंचाई मध्यम, पत्ते गहरे हरे तथा बीज सफेद होते हैं। इसकी औसत पैदावार 2.9 क्विंटल प्रति एकड़ है।

हरियाणा तिल नम्बर 2 (एच.टी. 2): यह किस्म 87 दिन में पक जाती है। इसका दाना सफेद होता है जिसमें तेल की मात्रा 48.2 होती है। यह पत्तों का मोजैक वायरस व फायलोडी रोग की अवरोधी किस्म है। इसकी औसत पैदावार 4.0 क्विंटल प्रति एकड़ है।

भूमि व इसकी तैयारी : तिल की खेती विभिन्न प्रकार की भूमि में की जा सकती है। लेकिन अत्यधिक रेतीली व क्षारीय भूमि इसकी खेती के लिये उपयुक्त नहीं है। अच्छे जल निकास की रेतीली दोमट मिट्टी तिल की खेती कि लिये उपयुक्त रहती है। अच्छे जमाव तथा बढ़वार के लिये खेत की 2-3 जुताइयां करके सुहागा लगाकर खूब भुरभुरा कर लेना चाहिये।

बिजाई का समय : तिल की बिजाई का उपयुक्त समय जुलाई महीने का पहला सप्ताह रहता है। इससे पहले बिजाई की गई फसल में बीमारियों व कीड़ों का प्रकोप अधिक रहता है।

बीज की मात्रा व बिजाई का समय : तिल के एक एकड़ की बिजाई के लिये उत्तम गुणवत्ता का 2.0 कि.ग्रा. बीज काफी रहता है। अच्छी पैदावार के लिये बिजाई खुड्डों में 30 सैं.मी. तथा पौधों में 15 सैं.मी. के फासले पर 2.5 सैं.मी. गहराई पर करें। उचित दूरी पर बीज डालने के लिये बीज को मिट्टी, राख या खाद में मिलाकर मात्रा बढ़ाकर बिजाई करें।

खाद की मात्रा तथा डालने की विधि : तिल की फसल को अधिक खादों की आवश्यकता नहीं होती है। यदि सम्भव हो सके तो गोबर की गली सड़ी खाद बिजाई से पहले देना अच्छा रहता है। कम उपजाऊ ज़मीन में 15 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (30-35 कि.ग्रा. यूरिया) प्रति एकड़ बिजाई से पहले डाल देना चाहिये।

मिश्रित फसल : कई बार तिल की अकेली फसल लेना जोखिम भरा रहता है। किसी कारणवश तिल की पूरी फसल असफल हो जाती है तो इस तरह के जोखिम को पूरा करने के लिये प्रयोगों में यह पाया गया है कि तिल और ग्वार की मिश्रित खेती (4:1) तिल की अकेली फसल से ज्यादा मुनाफा देने वाली साबित हुई है

फसल की सिंचाई : तिल की खेती आमतौर पर कम पानी वाली क्षेत्रों में की जाती है। कम वर्षा की स्थिति में ज़रूरत के अनुसार एक या दो सिंचाई फूल आने के समय डोडियां बनने के बाद अच्छी पैदावार के लिये के लिये देना आवश्यक है।

फसल की निराई व गुड़ाई : फसल को खरपतवार से मुक्त रखने के लिये बिजाई के 20-25 दिन बाद 'ह्वील हैण्ड हो' से निराई गुड़ाई करें। खरपतवारों की रोकथाम खरपतवारनाशक दवाइयों का प्रयोग करके भी कर सकते हैं। इसके लिये स्टॉम्प 1200 मि.ली. बिजाई के तुरन्त बाद या बासालीन या ट्रैफलान 800 मि.ली. बिजाई से पहले 250 लीटर पानी के साथ छिड़काव कर सकते हैं।

कटाई : पकने के समय फसल के पौधों के पत्ते गिर जाते हैं। पौधों व फलियों का रंग हरे से पीला हो जाता है जो पकने की पहचान है। पौधों को पूरी तरह सूखने से पहले कटाई करके बंडल बांधकर सीधे एक दूसरे का सहारा देकर खेत में खड़े कर देने चाहियें। इस तरह काटने के बाद फसल को अच्छी तरह सूखने पर पर तिरपाल या पक्के फर्श पर बंडलों को उल्टा करके हल्के तरीके से झाड़ने पर तिल फलियों से निकल जाता है। यदि कुछ फलियां कटाई के समय हरी दिखाई दें तो ऐसे पौधों को दो बार झाड़ने की ज़रूरत पड़ती है। पहली बार झाड़ने के 3-4 दिन बाद दूसरी बार झाड़ा जा सकता है। ।

(पृष्ठ 10 का शेष)

पहाड़ी क्षेत्रों और दूर दक्षिण के क्षेत्रों में भी खूब होने लगा है। चुकंदर से पैदा होने वाले सहउत्पाद, फोटर बीट व शुगर बीट पशु आहार का अंग बन चुके हैं। प्रति एकड़ 700 से 800 क्विंटल हरा चारा इसमें आसानी से प्राप्त हो जाता है। यह फसल कम क्षेत्र में अधिक उत्पादन देती है। जिसकी आज हमें आवश्यकता है। यह पशुओं को उनकी शारीरिक आवश्यकता के अनुसार कार्बोहाईड्रेट्स, प्रोटीन, खनिज तत्व व विटामिन उपलब्ध करता है व पशुओं के लिए अत्यंत स्वादिष्ट व पोषक भी है। दुधारू पशुओं में इसके सेवन से उनकी उत्पादकता में वृद्धि दर्ज की गई है।

अत: किसान भाई व्यावसायिक खेती करना चाहें तो कम लागत में चुकंदर की खेती अधिक लाभप्रद है। ।

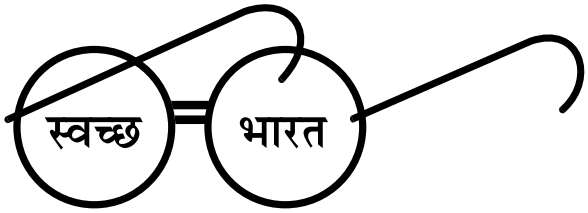

एक कदम स्वच्छता की ओर

अजोला के लाभ एवं तैयार करने की विधि

✎ **सौरभ, कौटिल्य चौधरी एवं कुलदीप सिंह**
मृदा विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

अजोला तेज़ी से बढ़ने वाली एक प्रकार की जलीय फर्न है, जो पानी की सतह पर तैरती रहती है। धान की फसल में नील हरित काई की तरह अजोला को भी हरी खाद के रूप में उगाया जाता है और कई बार यह खेत में प्राकृतिक रूप से भी उग जाता है। इस हरी खाद से भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ती है और उत्पादन में भी आशातीत बढ़ोत्तरी होती है। अजोला की पंखुड़ियों में एनाबीना नामक नील हरित काई की जाति का एक सूक्ष्म जीव होता है जो सूर्य के प्रकाश में वायुमंडलीय नत्रजन का यौगीकीकरण करता है और हरी खाद की तरह फसल की नत्रजन की पूर्ति करता है। भारत में मुख्य रूप से अजोला की जाति अजोला पिन्नाटा पाई जाती है। यह काफी हद तक गर्मी सहन करने वाली किस्म है।

अजोला के लाभ :

1. इसका बड़े पैमाने पर आसानी से उत्पादन किया जा सकता है और खरीफ व रबी दोनों मौसमों में हरी खाद के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है।
2. वायुमंडलीय नाइट्रोजन को परिवर्तित करने की दर लगभग 20 से 25 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर होती है।
3. यह वायुमंडलीय कार्बन डाइऑक्साइड और नाइट्रोजन को क्रमश: कार्बोहाइड्रेट और अमोनिया में बदल देता है और अपघटन के बाद, फसल को नाइट्रोजन उपलब्ध करवाता है तथा मिट्टी में जैविक कार्बन सामग्री उपलब्ध करवाता है।
4. ऑक्सीजन प्रकाश संश्लेषण में उत्पन्न ऑक्सीजन फसलों की जड़ प्रणाली और मिट्टी में उपलब्ध अन्य जीवों को श्वसन में मदद करता है।
5. यह ज़िंक, लोहा और मैंगनीज़ को परिवर्तित करता है और धान को उपलब्ध कराता है।
6. धान के खेत में अजोला छोटी-मोटी खरपतवार जैसे चारा और निटेला को भी दबा देता है।
7. अजोला प्लांट ग्रोथ रेगुलेटर और विटामिन छोड़ता है जो धान के पौधों के विकास में सहायक होते हैं।
8. अजोला एक सीमा तक रासायनिक नाइट्रोजन उर्वरक को 20 किलोग्राम पर हैक्टेयर के विकल्प का काम कर सकता है और ये फसल की उपज और गुणवत्ता बढ़ाता है।
9. यह रासायनिक उर्वरक के प्रयोग की क्षमता को बढ़ाता है।
10. यह धान के सिंचित खेत से वाष्पीकरण की दर को कम करता है।
11. सूखे अजोला को पोल्ट्री फीड के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है।
12. हरा अजोला मछली के लिए भी एक अच्छा आहार है।
13. रिजका और संकर नैपियर की तुलना में अजोला से चार से पांच गुणा उच्च गुणवत्ता युक्त प्रोटीन प्राप्त होती है और अधिक जैव भार उत्पादन देता है।

आर्थिक पशुपालन उत्पादन की वृद्धि में इन दोनों कारकों के अति महत्वपूर्ण होने से अजोला को जादुई फर्न अथवा सर्वोत्तम पादप अथवा हरा सोना अथवा पशुओं के लिए च्वनप्राश की संज्ञा दी गई है।

अजोला और अन्य चारे के बायोमास और प्रोटीन की तुलना

क्रम	मद	बायोमास का आर्थिक उत्पादन (मीट्रिक टन/हैक्टेयर)	शुष्क पदार्थ (मीट्रिक टन /हैक्टेयर)	प्रोटीन (%)
1	शंकर नैपियर	250	50	4
2	कोलाकट्टो घास	40	8	0.8
3	लूसर्न	80	16	3.2
4	लोबिया	35	7	1.4
5	सुबबूल	80	16	3.2
6	ज्वार	40	3.2	0.6
7	अजोला	1000	80	24

अजोला तैयार करने की विधि

अजोला का उत्पादन करने हेतु 2 मीटर लंबे 1 मीटर चौड़े और आधा मीटर गहरे सीमेंट कंक्रीट के टैंक की आवश्यकता होती है । 25 वर्ग मीटर क्षेत्र में 10 या अधिक टैंकों का निर्माण किया जा सकता है। सबसे पहले टैंक में समान रूप से मिट्टी डाल दें। मिट्टी की परत लगभग 10 सैंटीमीटर गहरी होनी चाहिए। टैंक में गाय का गोबर एक से 1.5 किलो प्रति वर्ग मीटर की दर से (प्रति टैंक 2-3 किलो गाय का गोबर) डालना चाहिए । टैंक में हर हफ्ते प्रति वर्ग मीटर 5 ग्राम की दर से सिंगल सुपर फास्फेट डालना चाहिए (प्रति टैंक 10 ग्राम एसएसपी)।

टैंक में मिट्टी से 10-15 सैंटीमीटर की ऊंचाई तक पानी डालना चाहिए। किट संक्रमण से बचाव के लिए 2 ग्राम कार्बोफ्युरान मिलाकर ताजा अजोला इनोकल्लम तैयार करें। पानी की सतह पर निर्मित फोम की परत को हटा दें। अगले दिन पानी की सतह पे लगभग 200 ग्राम ताज़ा अजोला इनोकल्लम छिडक दें। पानी की सतह पे अजोला की परत बनने में लगभग 2 सप्ताह का समय लग जाता है। टैंक में पानी का स्तर बनाये रखें। तेज़ धूप से बचाने के लिए टैंक पर शेड या छप्पर बना दें। एक सप्ताह बाद प्रतिदिन एक से दो किलो अजोला प्रयोग करने के लिए निकाल सकते हैं। अजोला को पशुओं को खिलाने से पूर्व ताज़ा पानी में अच्छे से धो लें। अजोला और पशु आहार को 1:1 अनुपात में मिलाकर पशुओं को खिलाया जा सकता है। अजोला से हटाए गए गाय के गोबर और खनिज मिश्रण की पूर्ति के लिए सप्ताह में एक बार गाय का गोबर और खनिज मिश्रण डालना चाहिए। हर 2 महीने बाद टैंक से पुरानी मिट्टी हटा दें और 15 किलो नई मिट्टी डाल दें ताकि टैंक में नाइट्रोजन निर्माण से बचाया जा सके और अजोला को पोषक तत्व उपलब्ध होते रहें। मिट्टी और पानी निकालने के बाद कम से कम 6 महीने में एक बार पूरी प्रक्रिया को नए सिरे से दोहराते हुए अजोला की खेती की जानी चाहिए।

अजोला उत्पादन में ध्यान रखने योग्य बातें :

1. पी.एच. 5.5 से 7 के बीच रखें।
2. संक्रमण मुक्त वातावरण अच्छी उपज के लिय अति आवश्यक है।
3. सीधी ओर पर्याप्त सूर्य की रोशनी वाले स्थान को प्राथमिकता दें।
4. उपयुक्त पोषक तत्व आवश्यकता अनुसार डालते रहें।
5. अजोला को नियमित रूप से करते रहें। ❍

150 YEARS OF CELEBRATING THE MAHATMA

अक्तूबर मास के कृषि कार्य

फसलों में

धान

धान की पकी फसल की कटाई आरम्भ करें। कटाई से लगभग एक सप्ताह पहले खेत से पानी बाहर निकाल दें। फिर इसे धूप में अच्छी तरह सुखा कर ही बोरी में भरें।

बाजरा

यदि बाजरे के तुरंत बाद चना या रबी की कोई अन्य फसल बीजनी हो तो पौधों को नीचे से काट कर छोटे-छोटे भरोटे (बण्डल) बना लें और खेत के बाहर एकत्र कर लें। यदि रबी की कोई फसल न लेनी हो तो पकी फसल से बालें काट लें और पौधों को खेत में खड़ा रहने दें ताकि कुछ समय तक इन्हें हरे चारे के रूप में प्रयोग किया जा सके। अगर अरगट का प्रकोप हुआ हो तो प्रभावित फसल को हरे चारे या दाने के लिए प्रयोग न करें।

मक्की

समय पर बोई गई फसल की कटाई करें। संकर व विजय मक्की के पौधे पकने पर कभी-कभी हरे नज़र आते हैं किन्तु जब ऊपर वाला छिलका पीले व भूरे रंग का हो जाये तो समझें कि फसल पक गई है।

कपास

अमेरिकन कपास की चुनाई 15-20 दिन के अन्तर पर व देसी कपास की चुनाई 8-10 दिन के अन्तर पर करें। प्रथम व अन्तिम चुनाई की कपास अलग एकत्र करें क्योंकि यह घटिया किस्म की होती है। चुनाई ओस खत्म होने के बाद प्रारम्भ करें। अमेरिकन कपास में इस माह के अन्त तक अन्तिम सिंचाई कर दें। टिण्डे व पत्ते खाने वाली सूण्डियों अथवा मिलीबग का प्रकोप हो तो गत माह बताई गई कीटनाशकों का प्रयोग करें व कीट नियंत्रण के अन्य उपाय भी अपनाएं।

उड़द व मूंग

पकने पर फसल की फौरन कटाई करें।

तकनीकी सहायता :

- एच. एस. सहारण, सह-निदेशक (कृषि परामर्श सेवा)
- अनिल कुमार गोदारा, विभागाध्यक्ष (बागवानी)
- डी. एस. दुहन, सहायक वैज्ञानिक (सब्जी विज्ञान)
- तरुण वर्मा, ज़िला विस्तार विशेषज्ञ (कीट विज्ञान)
- रोहतास कुमार, सहायक वैज्ञानिक (मृदा विज्ञान)
- वी. एस. हुड्डा, ज़िला विस्तार विशेषज्ञ (सस्य विज्ञान)
- देवेन्द्र सिंह बिढान, सहायक प्राध्यापक (पशु उत्पादन प्रबन्धन)
- राजेश दहिया, सहायक प्राध्यापिका (गृह विज्ञान)
- सूबे सिंह, सहायक निदेशक (विस्तार शिक्षा)

विस्तार शिक्षा निदेशालय, गांधी भवन

चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

तोरिया, सरसों, राया व तारामीरा

तोरिया की फसल की खोदी करें। सरसों व राया की बिजाई इस महीने के तीसरे सप्ताह तक तथा तारामीरा की महीने भर तक कर सकते हैं। देसी सरसों की उन्नत किस्म बी एस एच नं. 1, वाई एस एच 0401, राया की किस्म आर एच 30, वरुणा, लक्ष्मी, आर एच 781, आर एच 819, आर एस 8113, आर एच 9801 व आर बी 9901 (आर बी 50) आर एच 0119, आर एच 0406, आर एच 0749, आर एच 725 व तारामीरा की फसल टी 27 ही बोयें। इन सभी फसलों के लिए 2 कि.ग्रा. बीज प्रति एकड़ काफी रहता है। तना गलन रोग से बचाव के लिए कार्बेन्डाज़िम नामक दवा (2 ग्राम/कि.ग्रा. बीज से उपचार करें) सरसों व राया के बीज का उपचार एजोटोबैक्टर टीके के साथ लाभदायक है। इन फसलों को कतारों में 30 सैं.मी. की दूरी पर बीजें। बिजाई 'पोरा' विधि से करें। बारानी क्षेत्र के लिए राया आर एच 30, वरुणा (टी 59), आर एच 0119, आर एच 0406, आर एच 781 व आर एच 819 ही बोयें तथा कतार से कतार का फासला 45 सैं.मी. रखें। असिंचित तोरिया, सरसों व राया में 16 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (35 कि.ग्रा. यूरिया) तथा 8 कि.ग्रा. फास्फोरस (50 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट) प्रति एकड़ बिजाई से पहले डालें।

सिंचित तोरिया व सरसों में 24 कि.ग्रा. नाइट्रोजन व 8 कि.ग्रा. फास्फोरस प्रति एकड़ डालें तथा सिंचित राया में 32 कि.ग्रा. नाइट्रोजन व 12 कि.ग्रा. फास्फोरस व 8 कि.ग्रा. पोटाश प्रति एकड़ डालें। 10 किलोग्राम ज़िंक सल्फेट भी प्रति एकड़ बिजाई से पहले डालें। नाइट्रोजन की आधी मात्रा बिजाई के समय पोरें तथा शेष नाइट्रोजन की आधी मात्रा पहली सिंचाई पर डालें। तिलहनी फसलों (तोरिया, सरसों व राया) में फास्फोरस की सिफारिश की गई मात्रा सिंगल सुपर फास्फेट द्वारा ही डालें क्योंकि इस खाद द्वारा सल्फर की ज़रूरत भी पूरी हो जाती है। अगर फास्फोरस डी. ए. पी. द्वारा दे रहे हैं तो 100 कि.ग्रा. जिप्सम प्रति एकड़ डालें। यदि धौलिया अथवा आरामक्खी का आक्रमण हो तो 200 मि.ली. मैलाथियान (सायथियान) 50 ई.सी. को 200 लीटर पानी में प्रति एकड़ फसल पर छिड़कें। बालों वाली सूण्डी के लिए 250 मि.ली. मोनोक्रोटोफास 36 एस. एल. या 200 मि.ली. डाईक्लोर्वास 76 ई.सी. 200-250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें।

अरहर

इस समय फसल में फली छेदक सूण्डी काफी हानि करती है। इसके लिए 300 मि.ली. मोनोक्रोटाफास 36 एस. एल. या 600 मि.ली. क्विनलफास 25 ई.सी. को 300 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें।

लूसर्न (रिजका)

इसकी बिजाई इस माह के अन्तिम सप्ताह में करें। लूसर्न टी 9 अच्छी किस्म है। एक एकड़ खेत के लिए 4-5 कि.ग्रा. बीज काफी है। बिजाई कतारों में एक फुट के फासले पर करें। इसके बीज को भी लूसर्न का राइजोबियम का टीका लगाकर बोना चाहिये। लूसर्न बोते समय 22 कि.ग्रा. यूरिया तथा 250 कि.ग्रा. सुपर फास्फेट प्रति एकड़ डालें। इस खाद को ड्रिल द्वारा 10 सैं.मी. गहराई तक डालना चाहिए।

अलसी

इसकी बिजाई इस महीने के पहले पखवाड़े में करें। अलसी की के-2 किस्म बोने की सिफारिश की जाती है। बीज 20 कि.ग्रा. प्रति एकड़ पर्याप्त है। बिजाई कतारों में 23 सैं.मी. के फासले पर करें। खाद में 22 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (48 कि.ग्रा. यूरिया) प्रति एकड़ की दर से बिजाई के समय दें।

गेहूँ

बासमती धान आधारित फसल चक्र वाले क्षेत्रों में गेहूँ की सिंचित उपजाऊ भूमि पर समय पर बिजाई के लिए डब्ल्यू एच 1105, एच डी 2967, डी पी डब्ल्यू 621-50, डी बी डब्ल्यू 88, एच डी 3086, डब्ल्यू एच 283, पी बी डब्ल्यू 550, डब्ल्यू एच 542 (25 अक्तूबर से 15 नवम्बर तक) पछेती के लिए डब्ल्यू एच 1124, डी बी डब्ल्यू 90, एच डी 3059, डब्ल्यू एच-1021, पी बी डब्ल्यू 373 एवं राज-3765 किस्म चुनें। जबकि बाजरा व कपास फसल चक्र आधारित क्षेत्रों में गेहूँ की समय की बिजाई 15 नवम्बर तक पूर्ण कर लें। बारानी क्षेत्रों में सी 306 डब्ल्यू एच 1080, डब्ल्यू एच 1025 की बिजाई अक्तूबर के अंतिम सप्ताह से नवम्बर के प्रथम सप्ताह तक कर लेनी चाहिए। इसी प्रकार कठिया गेहूँ की किस्मों डब्ल्यू एच 896, डब्ल्यू एच 912, डब्ल्यू एच डी 943 की बिजाई का उत्तम समय अक्तूबर के अंतिम सप्ताह से नवम्बर का प्रथम सप्ताह है।

बीज व मृदाजनित रोगों से बचाव के लिए वीटावैक्स या बाविस्टिन 2 ग्राम या रैक्सिल-2 डी एस (एक ग्राम प्रति किलोग्राम बीज) से बीज का उपचार करें। बीज जनित करनाल बंट से बचाव के लिए बिजाई से पूर्व बीज का थाइरम (2 ग्राम) या रैक्सिल-2 डी एस (1 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज) से सूखा उपचार करें। गेहूँ में मिट्टी की जांच के आधार पर ही उर्वरक दें अन्यथा आम सिफारिशों के आधार पर खादों की मात्रा दें। बौनी किस्मों में सिंचित (धान व बाजरा के बाद) 30 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (65 कि.ग्रा. यूरिया), 24 कि.ग्रा. फास्फोरस (150 कि.ग्रा. एस एस पी) 24 कि.ग्रा. पोटाश (40 कि.ग्रा. एम ओ पी) व 10 कि.ग्रा. ज़िंक सल्फेट प्रति एकड़ बिजाई के समय ड्रिल करें। बाकी नाइट्रोजन पहली सिंचाई पर दें। सिंचित अन्य ज़िलों में 60 कि. ग्रा. नाइट्रोजन (आधी बिजाई+आधी पहली सिंचाई पर), 24 कि.ग्रा. फास्फोरस, 12 कि.ग्रा. पोटाश व 10 कि.ग्रा. ज़िंक सल्फेट ऊपर बताई गई विधि से दें।

गेहूं की समय पर बिजाई हेतु 40 कि.ग्रा. बीज प्रति एकड़ इस्तेमाल करें। पछेती बिजाई हेतु 25 प्रतिशत ज़्यादा बीज इस्तेमाल करें। मोटे दानों वाली किस्मों का 50 कि.ग्रा. बीज प्रति एकड़ डालें। गेहूँ की बिजाई बीज एवं उर्वरक ड्रिल से करनी चाहिए तथा बिजाई से पूर्व इसका केलिब्रेशन कर लेना चाहिए। लंबी बढने वाली सी 306 किस्म की बिजाई 6-7 सैं.मी. गहरी करें जबकि अन्य किस्मों को 5-6 सैं.मी. गहरा बोएं। समय की बिजाई के लिए दो खुड्डों का फासला 20 सैं.मी. रखें।

गेहूं में यदि कनकी के प्रति शाक प्रतिरोधकता उत्पन्न हो गई है तो इसके नियंत्रण के प्रबन्धन के लिए बिजाई के तुरंत बाद व उगने से पहले पैण्डीमैथालीन 30 ई.सी. को 2 लीटर प्रति एकड़ के हिसाब से 250 लीटर पानी में मिलाकर छिड़कें। इसी के क्रमबद्ध में उगी हुई खरपतवारनाशक पिनोक्साडेन (एक्सियल) 5% ई.सी. 400 मि.ली. या क्लोडीनाफोप 15% डब्ल्यू. पी. 160 ग्राम या सल्फोसल्फ्यूरॉन 75% डब्ल्यू. जी. 13 ग्राम या टोटल 16 ग्राम या एटलांटिस 160 ग्राम का प्रति एकड़ की दर से बिजाई के 30-35 दिन बाद 200 लीटर पानी में छिड़काव करें।

जौ

बारानी क्षेत्रों में जौ की बिजाई अक्तूबर माह के दूसरे पखवाड़े में शुरू कर दें। सिंचित क्षेत्रों में समय की बिजाई 15 से 30 नवम्बर के बीच कर लें। जौ की उन्नत किस्मों बी एच 75, बी एच 393, बी एच 902, बी एच 885 व बी एच 946 का प्रयोग करें। माल्ट जौ की किस्में विशेषत: बी एच 393 की बुवाई 15 से 30 नवम्बर के बीच पूरी कर लें। बी एच 885 किस्म की बिजाई 10 से 25 नवम्बर के बीच कर लें। दिसम्बर माह में बोई गई फसल पछेती मानी जाती है। पछेती बोई गई फसल में माल्ट की पैदावार व गुणवत्ता कम हो जाती है। बी एच 885 किस्म में खूड़ से खूड़ की दूरी 18 सैं.मी. होनी चाहिए व खाद की मात्रा इस किस्म के लिए 16 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (35 कि.ग्रा. यूरिया) 16 कि.ग्रा. फास्फोरस (100 कि.ग्रा. एस एस पी) व 8 कि.ग्रा. पोटाश (13 कि.ग्रा. एम ओ पी) प्रति एकड़ डालें। दीमक से बचाव के लिए 600 मि.ली. क्लोरपाइरीफॉस 20 ई.सी. या फारमोथियान 25 ई.सी. को 12.5 लीटर पानी में मिलाकर एक क्विंटल बीज का बुवाई से एक दिन पहले उपचार करें। बिजाई से पहले बीज का उपचार वीटावैक्स या बाविस्टिन 2 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज से सूखा उपचार करें।

जई

अधिक कटाइयों के लिए जई की उन्नत किस्म एच एफ ओ 114, ओ एस 6, ओ एस 7 व ओ एस 8 की बिजाई इस माह के मध्य से शुरू करें। 40 कि.ग्रा. बीज प्रति एकड़ पर्याप्त है। बिजाई कतारों में 25 सैं.मी. के फासले पर करें। सोलह किलोग्राम प्रति एकड़ नाइट्रोजन (35 कि.ग्रा. यूरिया) बिजाई पर पोरें तथा इतना ही पहले पानी पर दें।

चना

देसी चना की बिजाई मध्य अक्तूबर तक तथा काबुली चने की बिजाई इस माह के आखिरी सप्ताह में करें। बारानी इलाकों में उन्नत किस्म हरियाणा चना नं. 1 बोयें। जहां सिंचाई का साधन हो या वर्षा अच्छी होती हो वहां हरियाणा चना नं.-1, काबुली चना की हरियाणा काबुली नं. 1 किस्में बोयें। नम क्षेत्रों में सी 235 व हरियाणा चना नं. 3 किस्मों की बिजाई करें। हरियाणा चना नं. 5 की हरियाणा राज्य के सारे क्षेत्रों में बिजाई की जा सकती है। हरियाणा चना नं. 3 का 30-32 कि.ग्रा. व अन्य देसी किस्मों का 15-18 कि.ग्रा. तथा काबुली चने का लगभग 36 कि.ग्रा. व हरियाणा चना नं. 1 का 20 से 22 कि.ग्रा. बीज प्रति एकड़ काफी है। बिजाई से पहले बीज का क्रमश: कीटनाशक व फफूंदनाशक टीके से उपचार करें। दीमक से बचाने के लिए 850 मि.ली. मोनोक्रोटोफास 36 एस.एल. या 1500 मि.ली. क्लोरपाइरीफॉस 20 ई.सी. को पानी में मिलाकर कुल 2 लीटर घोल बनायें। ऐसे 2 लीटर घोल से 1 क्विंटल बीज को बीजने के एक दिन पूर्व पक्के फर्श या पॉलिथीन की शीट पर फैलाकर उपचारित करें। इसके बाद फफूंदनाशक बाविस्टिन (2.5 ग्राम) या जैविक फफूँदनाशक ट्राईकोडरमा विरिडी (बायोडरमा) 4 ग्राम + वीटावैक्स 1 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से करें। बीजोपचार के लिए 4 ग्राम बायोडरमा और 1 ग्राम वीटावैक्स को 5 मिलीलीटर पानी में लेप बनाकर प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचार करें। बिजाई 'पोरा' विधि से 2 खूड़ों का फासला 30 सैं.मी. रखकर इस प्रकार करें कि बीज 10 सैं.मी. गहरा पड़े। इससे कम गहराई पर पड़ने पर उखेड़ा रोग लगने का भय रहता है। जहां खेत में आल की कमी हो तो 2 खूड़ों का फासला 45 सैं.मी. रख कर बिजाई के समय 12 कि.ग्रा. यूरिया व 100 कि.ग्रा. सुपर फास्फेट प्रति एकड़ ड्रिल करें। यदि डी. ए. पी. मिल जाये तो 34 कि.ग्रा. डी. ए. पी. ही प्रति एकड़ बिजाई के समय बीज के नीचे ड्रिल करें। चने के बीज को राइजोबियम का टीका अवश्य लगायें और बहुत रेतीली ज़मीन में 10 कि.ग्रा. ज़िंक सल्फेट प्रति एकड़ के हिसाब से डालें।

अगेती बिजाई कभी न करें। दस अक्तूबर से पहले बिजाई करने से

उखेड़ा ज़्यादा आता है। बिजाई से पूर्व प्रति किलोग्राम बीज में 2.5 ग्राम बाविस्टिन मिलाकर बोयें। झुलसा रोग से बचाव के लिए सी 235 या हरियाणा चना नं. 3 किस्म ही बोयें। जिस खेत में अंगमारी का आक्रमण रहा हो वहां चने की फसल न लें।

बरसीम

यदि पिछले महीने बिजाई न कर सके हों तो इस महीने के पहले सप्ताह तक बिजाई पूरी कर लें। जिस ज़मीन में पहली बार बरसीम की बिजाई करनी हो उसमें बीज का टीकाकरण अति आवश्यक है। समय पर खेत में पानी लगाते रहें। 22 कि.ग्रा. यूरिया और 175 कि.ग्रा. सुपर फास्फेट प्रति एकड़ बिजाई से पहले छिट्टे द्वारा डालें। रेतीली तथा कमज़ोर ज़मीन में बिजाई से पहले 10 कि.ग्रा. ज़िंक सल्फेट प्रति एकड़ प्रयोग करें। बरसीम और जई की मिश्रित फसल में 16 कि.ग्रा. अतिरिक्त नाइट्रोजन प्रति एकड़ के हिसाब से बिजाई के समय देनी चाहिए।

गन्ना

शरद्कालीन गन्ने की बिजाई का समय सितम्बर के आखिर से अक्तूबर के पहले सप्ताह तक है। शरद्कालीन किस्में सी ओ एच 56, सी ओ एच 92, सी ओ जे 64 (अगेती) व सी ओ एच 99, सी ओ एच 128, सी ओ एच 119, सी ओ 7717, सी ओ एस 8436 हैं। बिजाई के समय 45 कि.ग्रा. यूरिया तथा 125 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट व 35 कि. ग्रा. पोटाश (एम ओ पी) प्रति एकड़ बीज के नीचे पोरें।

सब्जियों में

टमाटर

खेत से अधपके टमाटरों को तोड़कर बाज़ार में भेजने का प्रबन्ध करें। समय पर सिंचाई करें तथा विषाणु एवं फफूंद रोग से रक्षा के लिए 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. तथा 400 ग्राम इण्डोफिल एम-45 को मिलाकर प्रति एकड़ फसल पर, दो सप्ताह के अन्तर पर, नियमित रूप से छिड़काव करें। इस घोल के लिए लगभग 250 लीटर पानी की आवश्यकता होगी। फल छेदक कीट के नियन्त्रण के लिए 60 मि.ली. साइपरमेथ्रिन 25 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ फसल पर छिड़काव करें।

बैंगन

बैंगन के कच्चे फलों को समय पर तोड़कर बाज़ार में भेजें। समय पर फसल की सिंचाई करें। रस चूसने वाले कीड़ों के लिए 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़काव करें। फल छेदक सूण्डी की रोकथाम के लिए 75 मि.ली. स्पाइनोसेड (ट्रेसर 45 एस.सी.) का 15 दिन के अन्तर पर बारी-बारी से प्रति एकड़ छिड़काव करें। तना छेदक कीड़े से ग्रस्त तनों व फलों को नियमित रूप से निकालते रहें तथा उन्हें नष्ट कर दें।

मिर्च

हरी मिर्च को खेत से तोड़कर बाज़ार में बेचने के लिए भेजें। उचित समय पर फसल की सिंचाई करते रहें। नाइट्रोजन खाद की मात्रा खेत में दी जा चुकी होगी। रस चूसने वाले कीड़ों की रोकथाम के लिए 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें।

अक्तूबर-नवम्बर माह में मिर्च की बसन्त ऋतु की फसल के लिए नर्सरी में बिजाई की जाती है। उन्नत किस्में एन पी 46-ए. या पूसा ज्वाला या पन्त सी-1 का बीज प्रयोग करें। एक एकड़ खेत के लिए लगभग 400 ग्राम बीज की आवश्यकता होगी। बिजाई से पहले बीज को 2.5 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज का थाइरम नामक दवा से उपचार कर लें।

भिण्डी

भिण्डी के नर्म फलों को तोड़कर बाज़ार बेचने के लिए भेजें। आवश्यकता होने पर खेत में सिंचाई करें। नाइट्रोजन खाद दें। रस चूसने वाले कीड़ों की रोकथाम के लिए 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. तथा फल छेदक कीड़ों की रोकथाम के लिए 75-80 मि.ली. स्पाईनोसेड 45 एस.सी. को प्रति एकड़ 250 लीटर पानी में मिलाकर 15 दिन के अंतर पर छिड़काव करें।

कद्दू जाति की सब्जियां

कद्दू जाति की सब्जियों के फलों की तुड़ाई करें तथा उन्हें बाज़ार बेचने के लिए भेजें। फसल में नाइट्रोजन खाद दें। आवश्यकता होने पर फसल की सिंचाई करें। फल छेदक मक्खी की रोकथाम के लिए 400 मि. ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 1 कि.ग्रा. 250 ग्राम गुड़ और 250 लीटर पानी में मिलाकर एक एकड़ खेत की बेलों पर छिड़काव करें। बेलों को चिट्टा रोग (पाऊडरी मिल्ड्यू) से बचाने के लिए 8-10 कि.ग्रा. बारीक गंधक के धूड़े का भुरकाव करें। धूड़ा सुबह या शाम के समय करें। डाऊनी मिल्ड्यू से बचाव हेतु बेलों पर इण्डोफिल एम-45 या ब्लाइटॉक्स 50 के 0.2 प्रतिशत घोल का छिड़काव करें।

शकरकन्दी व अरबी

शकरकन्दी की फसल की देखभाल करें। आवश्यकता होने पर सिंचाई करें। अरबी की खुदाई का प्रबन्ध करें तथा बाज़ार बेचने के लिए भेजें। तैयार होने के लिए अरबी की फसल 130-160 दिन और शकरकन्दी की फसल 130-180 दिन ले लेती है।

फूलगोभी

फूलगोभी की अगेती किस्म पूसा कातकी की फसल की देखभाल करें। फसल के तैयार फूलों को काटकर बाज़ार भेजें। पछेती किस्म (स्नोबॉल-16) की बिजाई इस माह नर्सरी में की जा सकती है। बोने से पहले बीज को कैप्टान या थाइरम 2.5 ग्राम दवा प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित करें। अंकुरण के 6-7 दिनों बाद 0.2 प्रतिशत कैप्टान के घोल से (आर्द्र गलन बीमारी लगने पर) नर्सरी की सिंचाई करें। हानिकारक कीटों, चेपा, कूबड़ वाले कीड़े, सूण्डी और डायमण्ड बैक मॉथ से रक्षा करने के लिए 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 250 लीटर पानी में घोलकर एक एकड़ खेत में छिड़काव करें। बन्दगोभी, गाँठगोभी, मूली और शलगम में यदि कीटों का आक्रमण हो तो यही कीटनाशक प्रति एकड़ फसल पर छिड़कें। डायमण्ड बैक मॉथ की सूण्डी के लिए 60 मि.ली. डाइक्लोर्वास (न्यूवान/वैपोना) 76 ई.सी. या 400 ग्राम बी. टी. (बेसिलस थूरिजिएंसिस/बायोआस्प) का भी प्रति एकड़ छिड़काव कर सकते हैं।

बन्दगोभी और गाँठगोभी

बन्दगोभी तथा गाँठगोभी की बिजाई नर्सरी में इस मास में भी करें। बोने से पहले बीज को कैप्टान नामक दवा से उपचारित करें। 2.5 ग्राम फफूंदनाशक दवा प्रति किलोग्राम बीज की दर से बीजों का उपचार करें।

पालक

पालक फसल की देखभाल करें तथा तैयार पत्तों को काटकर गुच्छों में बांधकर बाज़ार में भेजें। पालक की नई बिजाई भी की जा सकती है।

मूली, शलगम व गाजर

मूली, शलगम व गाजर की तैयार जड़ों को उखाड़कर तथा उन्हें धोकर बाज़ार के लिए भेजें। इस माह विलायती किस्मों के बीजों की बिजाई तैयार खेत में करें। गाजर की किस्म नैंटीज, मूली की किस्म जापानी ह्वाइट तथा सफेद आइसिकल तथा शलगम की पर्पल टॉप ह्वाईट ग्लोब प्रयोग में लाएं। मूली की फसल पर कीट नियंत्रण के लिए 250-400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 200-250 लीटर पानी में प्रति एकड़ छिड़कें।

मटर

मटर की अगेती फसल की देखभाल करते रहें। फल लगते ही सिंचाई करें। खरपतवार निकालते रहें। अक्तूबर माह में मटर की बोनविले किस्म की बिजाई तैयार खेत में करें। एक एकड़ के लिए लगभग 20-30 किलोग्राम बीज की आवश्यकता होती है। कतारों की दूरी 30-40 सैं.मी. रखें। खेत की तैयारी के समय 8 टन गोबर की खाद डालकर मिट्टी में मिला दें। बिजाई के समय 12 कि.ग्रा. यूरिया तथा 125 कि.ग्रा. सिंगल सुपरफास्फेट भूमि में बीज के नीचे पोरें। मटर के चुरड़ा (थ्रिप) कीट के नियंत्रण के लिए 60 मि.ली. सायपरमेथ्रिन 25 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ फसल पर छिड़काव करें।

जड़गलन, सूखा रोग तथा अन्य बीज या मिट्टी जनित रोगों से बचाव के लिए 2 ग्राम बाविस्टिन या कैप्टान प्रति किलोग्राम बीज की दर से बिजाई से पहले बीजोपचार करें।

लहसुन

लहसुन की बिजाई यदि पिछले माह नहीं की है तो अभी कर लें और एक माह बाद 16 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (35 कि.ग्रा. यूरिया खाद) से प्रति एकड़ की दर से टॉप ड्रेसिंग करें तथा सिंचाई करें।

प्याज़ (रबी)

प्याज़ के बीजों की नर्सरी में इस माह बिजाई करें। एक एकड़ खेत के लिए पौध तैयार करने के लिए लगभग 4-5 कि.ग्रा. बीज की आवश्यकता होगी। अधिक उपज के लिए उन्नत किस्म हिसार-2 तथा पूसा रैड का ही प्रयोग करें। पौधशाला में पौध को रोगमुक्त रखना आवश्यक है।

आलू

आलू की उन्नत किस्म कुफरी चन्द्रमुखी, कुफरी बादशाह, कुफरी जवाहर, कुफरी सतलुज या कुफरी सिन्दूरी, कुफरी पुष्कर व कुफरी बहार का प्रयोग करें। एक एकड़ खेत के लिए लगभग 12 क्विंटल बीज लगता है। उचित होगा कि किसान स्वयं के खेत में प्रयोग के लिए बीज 'सीड टैक्नीक' से तैयार करें। बिजाई के समय 16-20 टन सड़ी गोबर खाद 24 कि.ग्रा. नाइट्रोजन (54 कि.ग्रा. यूरिया), 20 कि.ग्रा. फास्फोरस (120 कि.ग्रा. सिंगल सुपरफास्फेट) आवश्यकतानुसार और 20-40 कि.ग्रा. पोटाश (36-64 कि. ग्रा. म्यूरेट ऑफ पोटाश) प्रति एकड़ की दर से दें। आलू के बीजों को लगभग 10-15 सैं.मी. की गहराई पर बीजें। बिजाई के समय बीजों का अंकुरित होना आवश्यक है। अच्छा होगा कि पूरे आलू ही बीजें। स्वस्थ रोगरहित प्रमाणित बीज ही प्रयोग करें। आलू बीजने से पहले बीज को 5-10 मिनट तक 0.25 प्रतिशत इण्डोफिल एम-45 के घोल में रखकर उपचारित करें। बिजाई के बाद आवश्यकता होने पर खेत में सिंचाई करें। सिंचाई करते समय ध्यान रखें कि पानी आधी डोलों से ऊपर न जाये।

आलू फसल की खरपतवारों से रक्षा करने के लिए बिजाई के लगभग 10-12 दिनों बाद जब 10 प्रतिशत बीज अंकुरित हो चुके हों तो नाईट्राफिन नामक खरपतवारनाशक दवा के 2.5-3 लीटर घोल का प्रति एकड़ की दर से छिड़काव करें या स्टोम्प 30 ई.सी. 1.5 लीटर प्रति एकड़ की दर से बिजाई के 2-3 दिन बाद छिड़काव करें।

हरा तेला और सफेद मक्खी की रोकथाम हेतु 300 मि.ली. डाईमेथोएट 30 ई.सी. को 200-300 लीटर पानी में मिलाकर 10 दिन के अंतर पर प्रति एकड़ छिड़काव करें।

प्याज़ (खरीफ)

फसल की खरपतवारों से रक्षा करें और नियमित सिंचाई करें। यदि पौधों के पास की मिट्टी वर्षा से बह गई हो तो पौधों के साथ मिट्टी चढ़ाएं। नाइट्रोजन खाद से दो बार टॉप ड्रैसिंग करने की आवश्यकता होती है- प्रथम बार पौधरोपण/बिजाई के लगभग एक माह बाद तथा दोबारा इसके एक माह बाद करें। हर बार 16 किलोग्राम नाइट्रोजन (35 कि.ग्रा. यूरिया) प्रति एकड़ की दर से प्रयोग करें तथा उसके पश्चात् सिंचाई करें। फसल की हानिकारक कीट, थ्रिप से रक्षा के लिए 300 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 250 लीटर पानी में मिलाकर एक एकड़ फसल पर आवश्यकतानुसार छिड़काव करें। पर्पल ब्लाच नामक बीमारी के लक्षण दिखते ही फसल पर 400-500 ग्राम कॉपर ऑक्सीक्लोराईड या इण्डोफिल एम-45 को 200 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ फसल में प्रयोग करें तथा आवश्यकता होने पर 10-15 दिनों बाद दोहराएं। कीटनाशक व फफूंदनाशक घोल में सेल्वेट-99 दस ग्राम या ट्राईटोन 50 मि.ली. प्रति 100 लीटर घोल में मिलाना आवश्यक है।

अन्य सब्जियां

ग्वार व लोबिया की फलियों को तोड़ कर बाज़ार में बेचने के लिए भेजें। यदि सलाद की पौध तैयार हो तो रोपाई करें। मेथी व धनिया की बिजाई भी इस माह में की जा सकती है। एक एकड़ फसल के लिए 8-10 कि.ग्रा. बीज की आवश्यकता होती है।

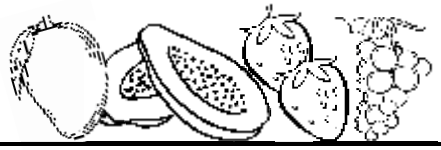

फलों में

वर्षा का पानी अगर भरा हुआ है तो उसे निकालना, वायुरोधक और फलदार पौधों की फालतू टहनियां काटना, नए लगाए पौधों की देखभाल करना, घास-फूस निकालना, पोषक तत्व देना, खाद का इंतज़ाम करना, निराई-गुड़ाई, रबी की बीच में बोई जाने वाली फसलों को लगाना और फल बेचने का प्रबंध करना आदि क्रियाएं बाग-बगीचे में करें।

नये पौधे इस महीने में भी लगाए जा सकते हैं। अगर अच्छे पौधे मिलते हों तो अब भी लगाए जा सकते हैं। लीची के पौधे इस माह में लगाने चाहिएं। अगर जुलाई-सितम्बर माह में लगाए पौधे मर गए हैं तो खाली स्थान पर उसी किस्म के पौधे लगाएं। अगर मूलवृंत पर कोई फुटाव निकलती हैं तो उन्हें हर 15 दिन के बाद काट दें। नए पौधे के फुटाव पर कीट एवं बीमारी का ध्यान रखें व सही समय पर उपचार करें। जट्टी-खट्टी या क्लीयोपेटरा पर संगतरा व माल्टा की आँख चढ़ाएं। जनवरी-फरवरी में ग्राफ्टिंग के लिए आंवला व अमरूद के देसी पौधे अभी से तैयार करें।

नींबू जाति के पौधे

पत्तों व फलों पर अगर पोषक तत्वों की कमी दिखाई दे तो ज़िंक सल्फेट 5 कि.ग्रा. और चूना 2.5 कि.ग्रा. को 1000 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें। इसी प्रकार नाइट्रोजन की कमी को पूरा करने के लिए 1-2 कि.ग्रा. यूरिया को 100 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। जस्ते की कमी से पत्ते की नसों के दोनों ओर की जगह सफेद सी हो जाती है तो इसके लिए 500 मि.ग्रा. प्लाण्टामाइसिन और 2 ग्राम कॉपर ऑक्सीक्लोराईड का प्रति लीटर पानी की दर से अक्तूबर, दिसम्बर, फरवरी व जुलाई में छिड़काव करें। माल्टे के अच्छी तरह पके हुए फल तोड़ लें और बेचने का प्रबंध करें। कीड़ों की रोकथाम के लिए यदि सितम्बर में बताई गई कीटनाशक दवा का छिड़काव न किया गया हो तो इस माह के शुरू में छिड़काव करें।

नींबू वर्गीय फलों को कैंकर रोग से बचाने के लिए कॉपर आक्सीक्लोराईड 0.3 प्रतिशत का छिड़काव करें। पहला छिड़काव अक्तूबर में, दूसरा छिड़काव दिसम्बर में व तीसरा छिड़काव फरवरी में करें। अगर अमरूद व जामुन में छाल खाने वाले कीड़ों का प्रकोप हो तो 10 मि.ली. मोनोक्रोटोफास 36 एस.एल. या मिथाइल पैराथियान 50 ई.सी. को 10 लीटर पानी में मिलाकर तने के छेद में भरकर चिकनी मिट्टी से बन्द करें।

बेर

नाइट्रोजन वाली खाद की बाकी बची आधी मात्रा भी (500 ग्राम-600 ग्रा. यूरिया) प्रति पेड़ के हिसाब से इस महीने के आखिर या नवम्बर में डालकर सिंचाई करें।

पाऊडरी मिल्ड्यू रोग से बचाव के लिए 200 लीटर पानी में 400 ग्राम सल्फैक्स या 200 मि.ली. कैराथेन का घोल बनाकर भली-भांति छिड़काव करें। छाल खाने वाले कीड़ों हेतु नींबू जाति के पौधों में बताया गया उपचार करें।

आम

निराई-गुड़ाई करें जिससे कि मिलीबग के लारवे सूर्य की रोशनी से खत्म हो जाएं।

लीची

लीची के पौधे इस माह में लगाए जा सकते हैं लेकिन यह ध्यान रखें कि पुराने पौधों के नीचे से थोड़ी मिट्टी लेकर नए पौधों के गड्ढों में अवश्य डालें।

पशुओं में

गाय-भैंस

सर्दी का मौसम आने वाला है। अत: अपने पशुओं को सर्दी से बचाने के लिए सभी प्रकार के प्रबंध कर लें। पशुओं के दाने को सूखे स्थान पर रखें तथा नमी से बचाएं। पशुओं को हवादार आवास में रखें जहां उन्हें नमी वाले मौसम में सांस लेने में तकलीफ न हो व श्वसन संबंधी रोग न हो।

इस मौसम में भैंस गर्मी में आती है और जब वह बोलती है, उसकी योनि पारदर्शी या साफ शीशे जैसा तार देती है और वह बार-बार पेशाब करती है। भैंस में गर्मी के लक्षण यदि सायं के समय देखे गये हों तो उसे अगली सुबह ही नये दूध कराना चाहिये और यदि लक्षण सुबह देखे गये हों तो सायं को कराना चाहिए। गर्मी में आने के 8-10 घण्टे के बाद मिलाई कराने से गर्भ ठहरने की सम्भावना बढ़ती है। नये दूध कराने के लिए अच्छा मुर्रा नस्ल का झोटा देखें या निकट के कृत्रिम गर्भाधान केन्द्र पर ले जायें। यदि भैंस गर्मी में न आती हो तो पशु चिकित्सक से उसकी जांच करवायें। नियमित समय पर भैंस को गर्मी में लाने के लिए उसे सन्तुलित आहार खिलायें और अच्छी किस्म के 50 ग्राम खनिज मिश्रण प्रतिदिन दें व पेट के कीड़े मारने की दवा दें। गर्भाधारण की संभावना बढ़ाने हेतु पशुपालक कृत्रिम गर्भाधान से लेकर दस दिन तक कढ़ी पत्ता (250-300 ग्राम) प्रतिदिन दे सकते हैं।

भेड़ और बकरियां

इस मौसम में पशुओं के पेट में कीड़े हो जाते हैं। भेड़ों के पेट के अन्दर के परजीवियों को मारने के लिए उनको नियमित रूप से कृमिनाशक दवा पशु चिकित्सक की सलाह से पिलायें। पशुओं को हवादार आवास में रखें, बन्द घर में न रखें, नहीं तो पशुओं की दम घुटने से मृत्यु हो सकती है। अच्छी और अधिक ऊन लेने के लिए आप अपनी देसी भेड़ों को उत्तम नस्ल के मेंड़ों से मिलवायें ताकि अच्छी नस्ल की भेड़ें उत्पन्न हो सकें। उत्तम नस्ल के मेंड़ों के लिए लाला लाजपत राय पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, हिसार के पशु विज्ञान महाविद्यालय से सम्पर्क करें।

कुक्कुट

हर महीने मुर्गियों को कृमिनाशक दवा पशु चिकित्सक की सलाह पर पिलायें। यदि यह दवा न पिलाई जाए तो उनके पेट में कीड़े हो जाते हैं जो उनके विकास को रोकते हैं और साथ ही अण्डों का उत्पादन घट जाता है और उनमें बीमारी लगने की सम्भावना बढ़ जाती है। छोटे चूजों की खुराक में बाईफ्रान या एम्प्रोलीयम आदि दवा का प्रयोग करें ताकि उन्हें खूनी दस्त की बीमारी न लगे। मुर्गियों को सन्तुलित आहार दें जिसमें प्रोटीन, एनर्जी और दूसरे तत्त्वों की पूरी मात्रा हो। यदि सन्तुलित आहार देने से अण्डों का उत्पादन कम हो जाये तो आहार की जाँच प्रयोगशाला से करवायें। बिछावन को दिन में दो बार पलटें ताकि वह सूखता रहे। मुर्गी दाने की अफलाटोक्सिन नामक विषैले पदार्थ के लिए जाँच करवायें। इस मौसम में ब्रायलर मुर्गियों में मुख्यत: कोक्सी व खराब फीड की शिकायत रहती है।

घर-आंगन में

गृह विज्ञान

- सफाई का खास ध्यान रखें। यदि वर्षा का पानी घर के आसपास इकट्ठा हो गया हो तो मच्छरों की वृद्धि रोकने के लिए उसमें मिट्टी का तेल छिड़कें।
- अनाज तथा दालों में समय-समय पर सुरसुरी देखते रहें, अगर आक्रमण हो तो बचाव के उपाय करें।
- रसोई की वस्तुएं अगर घर में अधिक मात्रा में हैं तो उन्हें कभी-कभी धूप लगवायें जिससे कीटाणु उत्पन्न नहीं होते।
- चमड़ी को फटने से बचाने के लिए गर्म पानी से धोकर सरसों का तेल या मलाई या वैसलीन का प्रयोग करें।
- वर्षा ऋतु में बच्चों में चर्म रोग हो जाते हैं जिनसे बचने के लिए पानी में नीम की पत्तियां उबालें तथा उबले पानी से बच्चों को नहलाएं। डिटॉल का प्रयोग करें। ❍

फसल उत्पादन में जैव उर्वरक का महत्त्व

- **जगदीश प्रशाद,राजेश गेरा एवं बलजीत सिंह**
सूक्ष्मजीव विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

फसल उत्पादन में सूक्ष्म जीवों का अधिक महत्त्व इसलिए है क्योंकि सूक्ष्म जीवों द्वारा पौधों को वातावरण में उपस्थित नाइट्रोजन, मृदा में उपस्थित पोषक तत्व की उपलब्धता, साथ ही सूक्ष्म जीवों द्वारा मृदा में डाले गये खरपतवारनाशक, कीटनाशक, फफूंदनाशक आदि रसायनों को भी अपघटन प्रक्रिया द्वारा इनका प्रभाव कम करने में भी सहायक होते हैं। इस समय फसलों की उत्पादकता में ठहराव तथा गिरावट का दौर शुरू हो चुका है। अच्छा उत्पादन और अधिक आर्थिक लाभ प्राप्त करने के लिए हमें संतुलित रासायनिक उर्वरकों के साथ-साथ अच्छे कार्बनिक खाद तथा जैव उर्वरकों का उपयोग भी करना होगा। जैव उर्वरक सस्ते व वातावरण को नुकसान नहीं पहुंचाने वाले होते हैं। जैव उर्वरकों को उनकी प्रकृति व कार्य के आधार पर मुख्य रूप से पांच श्रेणियों में बांटा जा सकता है:

1. नाइट्रोजन स्थिर करने वाले जैव उर्वरक (N2fixer)
2. स्फुर घोलक जैव उर्वरक (Phosphorus Solubilizers)
3. स्फुर विलयकारी (P-Mobilizers)
4. पौधों की वृद्धि को बढावा देने वाले बैक्टीरिया (PGPR)

1. नाइट्रोजन स्थिर करने वाले जैव उर्वरक: इसमें मुक्त बैक्टीरिया जैसे की एजोटोबैक्टर, एनाबिना वायवीय व क्लोस्ट्रीडियम अवायवीय, सहजीवी (Symbiotic) राईजोबियम, फ्रैन्किया, साहचर्य सहजीवी-एजोस्पाईरिलम एवं एन्डोफाइटिक ग्लुकोनोएसिटोबैक्टर बैक्टीरिया मुख्य रूप से आते हैं।

(1) एजोटोबैक्टर - एजोटोबैक्टर जीवाणु खाद्यान्न फसलों के साथ-साथ सब्जी वाजी फसलों की जड़ों में वातावरण में उपस्थित नाइट्रोजन को स्थिर करने का कार्य करते हैं। इसके साथ ये पौधों में वृद्धि करने वाले पदार्थ जैसे कि विटामिन बी, IAA, GA, थाईमिन, राईबोफ्लेवीन प्राईरिडोक्सीन व पेन्टोथेनिक एसिड पैदा करते हैं। इसके अलावा ये पौधों की बिमारियों को जैव नियन्त्रक के रूप में भी रोकते हैं। इसके उपयोग से फसल पैदावार में 15-20 प्रतिशत तक वृद्धि होती है। इनके द्वारा विभिन्न फसलों में 20-40 किग्रा० प्रति हैक्टेयर तक नाइट्रोजन स्थिर होती है जिससे लगभग 20 प्रतिशत नाइट्रोजन उर्वरकों की खपत कम हो जाती है। इसके अलावा ये पौधों में फफूंदी द्वारा होने वाले कई रोगों के लिए प्रतिरोधक क्षमता उत्पन्न करते हैं एवं बीजों की अंकुरण क्षमता भी बढ़ाते हैं।

(2) राईजोबियम - यह जीवाणु मख्यत: दलहनी फसलों में नाइट्रोजन स्थिरीकरण का कार्य करते हैं। दलहनी फसलों में कुछ गांठें पाई जाती हैं और इन गांठों में उपस्थित जीवाणु वायुमंडल में उपलब्ध नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करके पौधों को पोषण प्रदान करते हैं। ये 60 से 120 किलो नाइट्रोजन प्रति हैक्टेयर मृदा में एकत्रित कर सकते हैं। इनकी सात मुख्य प्रजातियां होती हैं जो कि दलहनी फसलों के लिए विशिष्टकृत होती हैं जैसे राइजोबियम लेग्युमिनोसेरम मटर के लिए, राईजोबियम मेलिलोटाई मेथी के लिए और राईजोबियम फेजियालाई फ्रेंचबीन के लिए।

(3) एजोस्पाईरिलम- यह पौधों की जड़ों में चिपके रहते हैं। ये भी नाइट्रोजन स्थिरीकरण के अलावा पौधों में वृद्धि करने वाले पदार्थ उत्पन्न करते हैं। ये 10 से 40 किलो तक नाइट्रोजन प्रति हैक्टेयर स्थिर करके 20 से 25 प्रतिशत नाइट्रोजनयुक्त रासायनिक उर्वरकों की बचत करते हैं।

2. स्फुर घोलक जैव उर्वरक: बहतु सारे बैक्टीरिया और कवक मिट्टी में उपलब्ध अघुलनशील फास्फोरस को घुलनशील फास्फोरस में बदल देते हैं जिसको पौधे आसानी से अवशोषित कर लेते हैं।

3. स्फुर विलयकारी: स्फुर विलयकारी के रूप में जाना जाने वाला महत्त्वपूर्ण माईकोराइजा का निर्माण कवक के द्वारा होता है। ये पौधों की जड़ व मृदा के बीच में प्रमुख कड़ी की भूमिका निभाते हैं। माइकोराइज़ा पौधों को पोषक तत्व उपलब्ध कराकर बदले में कार्बन ग्रहण करती है। ये पौधों को विपरीत परिस्थितियों जैसे कि लवणता, भारी धातु प्रदुषण से भी बचाने में सहायता करते हैं।

4. पौधों की वृद्धि को बढ़ावा देने वाले बैक्टीरिया: पीजीपीआर इनोकुलेंट पौधों की वृद्धि को पौधों में होने वाली बिमारियों की रोकथाम, उन्नत पोषक तत्व अधिग्रहण, (जैविक खाद), पादप हार्मोन उत्पन्न करते हैं। पीजीपीआर (PGPR) को पादप हार्मोन उत्पन्न करने वाले व जैव उद्दीपक के नाम से जाना जाता है। ये इन्डोल एसिटिक अम्ल, साईटोकायनिन, जिर्बेलीन एवं इथाईलिन रोधक उत्पन्न करते हैं।

जैव उर्वरकों को उपयोग करने की विधि:

बीजोपचार: एक बर्तन में 250 मि.ली. पानी में 50 ग्राम गुड़ और 50 मिली० जैव उर्वरक मिलाकर अच्छी तरह घोलते हैं। इसके बाद एक बर्तन में 10 किलोग्राम बीज लेकर उसमें घोल अच्छी तरह मिलाते हैं तथा बीजों को हाथों से उलटते रहते हैं। इस बीज को छायादार स्थान में 20-30 मिनट सुखाकर बुवाई की जाती है।

- पैदावार में वृद्धि होती है।
- पर्यावरण मित्र होते हैं।
- ये सस्ते होते हैं।
- एजोटोबैक्टर से उपचारित पौधों में सूत्रकृमि की बीमारी से बचने की क्षमता होती है।
- मिट्टी की बनावट व उर्वराशक्ति बढ़ती है।
- मिट्टी से होने वाले रोगों की रोकथाम करते हैं।
- बीजों की अंकुरण क्षमता में वृद्धि होती है।
- एकदम अपना प्रभाव नहीं दिखाते, परन्तु कुछ समय उपरान्त परिणाम बहुत अच्छे होते हैं।

निष्कर्ष: जैव उर्वरकों को फसल में नाइट्रोजन उपलब्ध कराने व फास्फोरस विलेयक के रूप में ही प्रयोग किया जाता है किन्तु इनके उपयोग से फसलों को अनेक वृद्धि नियामक रसायन भी मिलते हैं जिन्हें साधारण पौधे सीधे ग्रहण करने में असमर्थ होते हैं। रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग से मृदा की उर्वराशक्ति लगातार क्षीण होती जा रही है जोकि टिकाऊ खेती के लिए खतरनाक साबित हो रही है। टिकाऊ कृषि उत्पादन हेतु आज आवश्यकता इस बात की है कि हम कैसे मृदा स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिए जैव-उर्वरकों का योगदान भुला सकते हैं क्योंकि ये पर्यावरण के मित्र भी हैं और हर प्रकार से अपना प्रभाव, बिना पर्यावरण को प्रदूषित करे, इसकी उर्वरकता बढ़ाने में सहयोग करते हैं। ।

नीम द्वारा निमेटोड (सूत्रकृमि) का समाधान

- विनोद कुमार, प्रियंका दुग्गल एवं अनिल कुमार
सूत्रकृमि विज्ञान विभाग,
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

सूत्रकृमि क्या है ?

सूत्रकृमि (निमेटोड) सूक्ष्म, कृमि के समान जीव है जो पतले धागे के समान होते हैं। इनका शरीर लंबा, बेलनाकार व पूरा शरीर बिना खंडों का होता है। इन्हें इनके सूक्ष्म आकार, अर्ध पारदर्शी शरीर के कारण सामान्य नग्न आँखों से खेतों में नहीं देखा जा सकता। जिन्हें सूक्ष्मदर्शी से आसानी से देखा जा सकता है। इनका आकार 0.2 मिमी.–10 मिमी. तक हो सकता है। इन सूत्रकृमियों के मुख्य भाग में सुई के समान एक संरचना होती है जिसे स्टाइलेट कहते हैं, जिसके द्वारा ये जड़ों में संक्रमण करके उसके कोशिकाओं व उत्तकों से पोषण लेते हैं।

सुत्रकृमि ग्रसित पौधों के लक्षण

सूत्रकृमि में प्रमुख रूप से पादप परजीवी सूत्रकृमि है। पादप परजीवी सूत्रकृमि प्राय: अपने परपोषी पौधों की जड़ों में एवं जड़ों के चारों ओर की मिट्टी में अथवा पौधों के तनों, पत्तियों एवं बीजों में पाए जाते हैं। नीमेटोड ग्रसित पौधों से होने वाले फसलों के लक्षण और नीमेटोड कीट के प्रकार के आधार पर भिन्न होते हैं। इनमें मुख्य रूप से जड़ गांठ सूत्रकृमियों का विभिन्न फसलों पर प्रकोप ज़्यादातर देखा गया है, जो पौधे की जड़ों पर आक्रमण करते हैं। जिससे जड़ों की गांठें फूल जाती हैं व आपस में विभक्त होकर गुच्छा बना लेती है। जड़ों द्वारा जल व पोषक तत्व ग्रहण करने की क्षमता कम हो जाती है या रूक जाती है, जिसके कारण पौधों को भूमि से खाद पानी या पोषक तत्व पूरी मात्रा में नहीं मिल पाते और पौधों की बढ़वार रुक जाती है। जिससे पौधा आकार में बौना, पौधों की पत्तियां पीली, पौधा मुरझाने लगता है एवं फसल की उपज क्षमता कम हो जाती है।

निमेटोड (सूत्रकृमि) द्वारा ग्रस्त होने वाली फसलें

निमेटोड द्वारा प्रभावित होने वाली फसलें हैं गेहूं, धान, टमाटर, बैंगन, भिंडी, खीरा, मिर्च, इत्यादि व फलों में अमरूद, निम्बू, अंगूर, अनार, एवं समस्त प्रकार के फल व अन्य पौधे।

कैसे पहचानें ?

आपके पौधे बढ़ न पा रहे हों, पौधे सूख के मुरझा जाते हैं तथा उनकी जड़ों में गांठें बन गयी हों व उनमें फल व फूल की संख्या बहुत कम हो गयी हो।

नीम के द्वारा निमेटोड का समाधान

सूत्रकृमि विभिन्न प्रकार की फसलों में रोग उत्पन्न करता है, जिसकी पहचान आमतौर पर किसान नहीं कर पाते एवं अन्य रोगनाशक रसायनों का छिड़काव कर रोकथाम करने का प्रयास करते हैं, जिससे उनका श्रम, पैसा व समय बर्बाद होता है एवं सफलता भी नहीं मिलती। अत: इन सूत्रकृमि की पहचान करना ज़रूरी है एवं इनसे होने वाले रोगों की पहचान कर इन्हें विभिन्न विधियों द्वारा नियंत्रण किया जाना चाहिये। सूत्रकृमियों के कारगार नियंत्रण के लिये सबसे पहले सूत्रकृमि की पहचान, रोगजनक, रोग के लक्षण आदि की पहचान होना अति आवश्यक है जिससे इसकी रोकथाम करने के विभिन्न उपाय अपनाने में आसानी हो सके। वर्तमान में बढते हुये रासायनिक तत्वों के प्रयोगों के कारण भूमि, जल, पर्यावरण, खाद्य पदार्थ के खराब होने एवं मानव स्वास्थ्य पर पड़ने वाले विपरीत

(शेष पृष्ठ 20 पर)

पराली से बायोगैस का उत्पादन : एक प्रबल संभावित तकनीक

- यादविका, कमला मलिक एवं वाई. के. यादव
प्रसंस्करण एवं खाद्य अभियांत्रिकी विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

भारत में लगभग 43.95 मिलियन हैक्टेयर में धान की खेती की जाती है जिसमें उत्पादित चावल एवं भूसे का अनुपात 1:1.5 होता है। उत्पादित धान के भूसे के कुछ हिस्सों का उपयोग आधुनिक बायोमास पावर प्लांट, ईंट भट्टों, कार्डबोर्ड बनाने, मशरूम की खेती आदि के लिए किया जाता है एवं कुछ हिस्सों का उपयोग ग्रामीण क्षेत्रों में घरेलू बायोमास कुकस्टोव के ईंधन के रूप में किया जाता है। कंबाइन हार्वेस्टर से कटाई के कारण खेतों से सारा भूसा एकत्रित नहीं हो पाता है एवं इसके भंडारण से जुड़ी समस्या के कारण किसान इसे रुपये प्रति मीट्रिक टन की गैरकिफ़ायती कीमत पर बेच देते हैं अथवा लगभग दो–तिहाई भूसे को खेतों में खुले तौर पर जला दिया जाता है ताकि खेत को तुरंत अगली गेहूं फसल की बुवाई के लिए तैयार किया जा सके।

धान की पराली जलाने से ग्रीन हाऊस गैसों का उत्पादन : शोधकर्ताओं का सुझाव है कि धान के भूसे के खुले मैदान में जलने से हानिकारक ग्रीनहाऊस गैसों के उत्सर्जन में भारी योगदान होता है जिनमें पोलीसाइक्लिक एरोमेटिक हाईड्रोकारबंस (PAHs), पोलीक्लोरीनेटि डाइबेनजो–पी–डाइऑक्सिन्स (PCDDs) एवं पोलिक्लोरीनेटेड डिबेंज़ोफुरन्स (PCDFs) जिन्हें डाइऑक्साइंस भी कहा जाता है। प्रयोगात्मक रूप से, यह मूल्यांकन किया गया है कि एक टन धान की पराली जलाने से 3 किलो कण पदार्थ, 60 किलो कार्बन मोनोआक्साईड, 1460 किलो कार्बन डाइआक्साईड, 199 किलो राख एवं 2 किलो सल्फर डाइआक्साईड उत्सर्जित होता है। स्थानीय रूप से पराली को जलाने से यह पर्यावरण को प्रभावित करता है क्यूंकि इन वायु प्रदूषकों में विषैले गुण होते हैं जोकि संभावित कैंसरजनित होते हैं। चूंकि नवीकरणीय ऊर्जा संसाधन भौगोलिक परिस्थितियों के अनुसार भिन्न होते हैं, धान के भूसे से जैव ऊर्जा उत्पादन का हरियाणा और पंजाब और भारत के अन्य उत्तरी राज्यों में व्यापक दायरा है।

धान की पराली का अवायवीय पाचन : बायोमास संसाधनों को संभालकर, ऊर्जा और जैव–उर्वरक का उत्पादन करने के लिए, अवायवीय पाचन तकनीक, ऊर्जा उत्पादन/इनपुट अनुपात के मामले में एक सबसे प्रभावी तरीका है। बायोमीथेनेशन उद्देश्यों के लिए धान की पराली को गांठ के रूप में संग्रहीत किया जा सकता है। इसके अलावा, धान की पुआल का आकार 3–5 मि.मी. के स्तर पर घटाने के लिए एक पुलावीकरण इकाई का उपयोग किया जा सकता है। धान के भूसे के निकटतम विश्लेषण से पता चला है कि धान के भूसे में 10.0 प्रतिशत नमी और 90.0 प्रतिशत कुल ठोस पदार्थ जबकि 84.0 प्रतिशत और 16.0 प्रतिशत अस्थिर ठोस पदार्थ और राख पदार्थ होते हैं। अंतिम विश्लेषण के परिणामस्वरूप सूखे वज़न के आधार पर 40.00 प्रतिशत कार्बन, 5.50 प्रतिशत हाइड्रोजन और 0.75 प्रतिशत नाइट्रोजन होती हैं। मौलिक विश्लेषण पर, यह पाया गया है कि चावल की पराली बायोमास में मौजूद नाइट्रोजन की मात्रा बहुत कम है (C/N = 54-0)। धान के भूसे के रचनात्मक विश्लेषण में 39.90 प्रतिशत सेलूलोज़, 24.0 प्रतिशत हेमिसेल्यूलोज और 5.6 प्रतिशत लिग्निन का खुलासा हुआ। बायोमीथेनेशन की क्रिया अवायवीय पाचकों में की जाती है जहां पंप का उपयोग करके फ़ीडिंग इकाई के माध्यम से तैयार धान की

पराली के सब्सट्रेट को डायजेस्टर को फीड जाता है। इन बायोगैस संयंत्रों में कोई बाहरी तापीय स्रोत की आवश्यकता नहीं है क्योंकि उत्तरी भारत का वार्षिक औसत तापमान मेसोफिलिक रेंज के भीतर है। डायजेस्टर में 8-10 प्रतिशत टीएस बनाए रखने के लिए लोडिंग दर की जा सकती है जबकि 30 दिनों के हाइड्रोलिक प्रतिधारण समय (एचआरटी) में डायजेस्टर को बनाए रखा जा सकता है। पाचित स्लरी को ठोस-तरल पृथक मशीन का उपयोग करके अलग किया जा सकता है। धान के भूसे से बायोमीथेन उत्पादन के विश्लेषण से पता चला कि ऊर्जा रूपांतरण का यह मार्ग उपलब्ध उपयोगी ऊर्जा और ग्लोबल वार्मिंग क्षमता के मामले में सबसे अधिक कुशल है। बिजली उत्पादन के आंकड़ों से पता चला है कि बायोमीथेन द्वारा 777.0 किलोवाट/टन धान की पराली का बिजली उत्पादन होता है जबकि आउटपुट / इनपुट ऊर्जा अनुपात 5.5 होती है।

बायोममीथेनेशन उसी धान की पराली से अतिरिक्त ऊर्जा लेने के साथ ही एक अतिरिक्त लाभ के रूप में टिकाऊ कृषि के लिए एक मूल्यवान खाद प्रदान करता है। विश्लेषण से पता चला कि धान के भूसे की बायोमीथेनेशन द्वारा नेट ग्लोबल वार्मिंग क्षमता में 2,750 किलो कार्बन डाइआक्साईड उत्सर्जन/टन कम कर देता है। यह सुझाव दिया जा सकता है कि एनारोबिक पाचन मार्ग के माध्यम से बायोमीथेन उत्पादन के लिए धान के भूसे का उपयोग ऊर्जा और पर्यावरण अर्थशास्त्र के मामले में सबसे अच्छा तरीका है। विकेंद्रीकृत और केंद्रीकृत प्रणाली के वाणिज्यिक बायोगैस उत्पादन संयंत्रों को लॉजिस्टिक लागत कम करने के लिए गांवों के समूह स्तर पर उचित रूप से स्थापित किया जा सकता है। उपलब्ध ऊर्जा को खाना पकाने के साफ एवं हरे ईंधन के रूप में, बिजली उत्पादन के साथ-साथ वाहनों की आवश्यकता के आधार पर वाहन ईंधन अनुप्रयोगों की आपूर्ति के लिए उपयुक्त रूप से उपयोग किया जा सकता है।

सतत विकास दृष्टिकोण : धान के भूसे प्रबंधन के लिए बायोगैस आधारित ऊर्जा समाधान स्थिरता के सभी मानदंडों पर खरा उतरता है। यह समाधान भी 'तकनीकी रूप से व्यवहार्य' और पर्यावरण अनुकूल है। वाणिज्यिक बायोगैस उत्पादन उद्योगों की स्थापना के माध्यम से धान के भूसे और अन्य फसल अवशेषों को खुले में जलाने से बचाया जा सकता है। यह सब्सट्रेट के सड़ने के कारण हुई मीथेन उत्सर्जन को कम करता है। बायोगैस का उपयोग उर्वरक, कीटनाशकों और कीटनाशकों के उपयोग को कम कर सकता है। साथ में मिट्टी के स्वास्थ्य और क्षतिग्रस्त नमकीन उपजाऊ भूमि को पुनर्प्राप्त करने की क्षमता रखता है। जैव उर्वरक फॉस्फेट निर्धारण समस्या पर काबू पाने में मदद कर सकते हैं। सरकार ने बिजली और उर्वरकों को भारी सब्सिडी दी है और बायोगैस संयंत्र के उत्पादों को सब्सिडी वाले मूल्य के साथ प्रतिस्पर्धा करना है। इसलिए, बायोगैस संयंत्र से निर्मित जैविक उर्वरक को फॉस्फेटिक रासायनिक उर्वरक के समान मूल्य पर रखा जा सकता है।

यह विदेशी मुद्रा बहिर्वाह को भी बचाएगा क्योंकि अधिकांश रासायनिक फॉस्फेट भारत में आयात किए जाते हैं। बायोगैस से उत्पादित बिजली को अलग-अलग कीमतों पर वापस किया जा सकता है। धान के भूसे से 300 घन मी/टन बायोगैस की वर्तमान उत्पादकता को और अधिक टिकाऊ बनाने के लिए इस क्षेत्र में आगे के अनुसंधान और विकास के साथ सुधार किया जा सकता है।

धान के भूसे से बायोगैस का उत्पादन इसलिए रोज़गार उत्पादन में सीधे और अप्रत्यक्ष रूप से मदद करेगा, जिसके कारण यह आर्थिक रूप से व्यवहार्य नहीं बल्कि आकर्षक भी है।

बाधायें : धान के भूसे से बायोगैस के उत्पादन में प्रमुख बाधा बायोगैस संयंत्र के जैविक खाद का प्रचार है।सरकारी विभाग, विशेष रूप से कृषि, विश्वविद्यालयों द्वारा प्रस्तावित फसलों के पैकेज एवं प्रैक्टिस में जैविक खाद के उपयोग का ज़िक्र नहीं किया जाता है। रासायनिक उर्वरकों के विपरीत, जैविक खाद तत्काल परिणाम नहीं दिखाता है लेकिन दीर्घकालिक महत्वपूर्ण परिणाम होते हैं। इसलिए, सरकार को इसे व्यवहार्य बनाने के लिए किसानों को अधिक प्रभावी तरीके से जागरूक करने के लिए पहल करनी चाहिए।

निष्कर्ष : धान के भूसे का जलाया जाना भारत में एक गंभीर चिंता का विषय है और यह नीति निर्माताओं और शोधकर्ताओं का ध्यान आकर्षित कर रही है। इस प्रकार निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यह कहा जा सकता है कि लाभ दिए जाने पर, बायोगैस से उत्पन्न ऊर्जा की आपूर्ति ग्रामीण व्यवसायों और उद्यमों को बढ़ने और समृद्ध होने में सहायता करेगी, कार्बनिक उर्वरकों के उत्पादन और उपयोग से मिट्टी में सुधार होगा और उपज में वृद्धि होगी, और इससे स्थानीय नौकरी के अवसर पैदा करके रोज़गार उत्पादन में भी मदद मिलेगी (यह कहना एक संदिग्ध तथ्य नहीं होगा कि बायोगैस आधारित ऊर्जा ग्रामीण क्षेत्रों के लिए टिकाऊ समाधान प्रदान कर सकती है। ऐसी परियोजनाओं के माध्यम से सब्सिडी बिलों और विदेशी मुद्रा बहिर्वाह में काफी बचत प्राप्त की जा सकती है। इसके अलावा, ईंधन और ऊर्जा की उपलब्धता के माध्यम से, इस क्षेत्र में समग्र स्वास्थ्य और स्वच्छता में सुधार होगा, और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि यह ग्रामीण समुदाय के 'सशक्तिकरण' का वादा करता है, जो इसे एक बहुगुणनीय और स्केलेबल मॉडल बनने के लिए उपयुक्त बनाता है।

पर्यावरण, ऊर्जा और कृषि क्षेत्रों पर उनके व्यापक पहुंचने वाले सकारात्मक प्रभाव के कारण, धान के भूसे आधारित बायोगैस संयंत्र एक नयी पहल के साथ टिकाऊ विकास के महत्वपूर्ण स्तंभ हैं जिससे किसानों और उद्योगों के बीच पारस्परिक लाभ के लिए लाभदायक भागीदारी बनाई जा सकती है। ।

(पृष्ठ 19 का शेष)

असर को देखते हुये सूत्रकृमि नियंत्रण के लिये जैविक समाधान (नीम एवं नीम की खली) के तरीके अपनाने चाहिएं। नीम की खली के इस्तेमाल से निमेटोड की संख्या बढ़नी रुक जाती है। कार्बनिक खाद (नीम) सूत्रकृमियों के प्रति प्रतिरोध उत्पन्न करने वाले कुछ ऐसे कवक व बैक्टीरिया को बढ़ावा देती है, जिससे इनका संक्रमण कम हो जाता है। खाद को भूमि की जुताई करते समय या बीज बोने या पौध लगाने के 20-25 दिन पहले डालना चाहिये। नीमखाद के इस्तेमाल से उपज से 40 प्रतिशत तक की वृद्धि भी होती है और फूलों तथा फलों की संख्या भी बढ़ती है।

घीया की फसल में नीम की खली 30 ग्राम प्रति पौधा बिजाई के एक सप्ताह पहले खेत में मिलायें।

फलों में-अनार, निम्बू, किन्नु एवं समस्त प्रकार के फलों के व अन्य पौधों के रोपण के समय एक मीटर गहरा गड्ढा खोद कर कार्बोफ्यूरान 3 जी के साथ-साथ 1 किलोग्राम नीम की खली एवं गोबर की खाद मिट्टी में अच्छी तरह मिला कर प्रति पौधारोपण करें।

अगर पौधे पहले से लगा रखे हैं तो भी पौधों की उम्र के हिसाब से नीम की खल की मात्रा संतुलित करें।

पॉलीहाउस में नीम की खली (100 ग्राम प्रति वर्ग मीटर) तथा ट्राईकोडरमा विरिडी (20 ग्राम प्रति वर्ग मीटर) फसल की रोपाई से एक सप्ताह पहले मिट्टी के ऊपरी भाग में अच्छी तरह मिलाकर हल्का पानी दें। ।

संरक्षण कृषि : मृदा प्रबंधन तकनीक

- **नरेन्द्र, रोहतास कुमार एवं अबीर डे**[1]
मृदा विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

विश्व में भूमि क्षरण एक गंभीर पर्यावरणीय समस्या है जो कि हमारे पारिस्थितिकी तंत्र एवं खाद्य सुरक्षा के लिए एक खतरा है। भूमि क्षरण से मृदा का कटाव, पोषक तत्वों का दोहन, मृदा में कार्बनिक पदार्थों की कमी, मिट्टी की उत्पादन शक्ति में कमी, जैव विविधता में कमी, अनियमित भूजल स्तर, जलवायु परिवर्तन एवं आर्थिक नुकसान प्रमुख रूप से हो रहा है। भारत में सभी प्रकार की जलवायु जैसे शीतोष्ण, सम शीतोष्ण, कटिबंधीय, उष्ण कटिबंधीय इत्यादि पर कृषि की जाती है। हाल के वर्षों में, संरक्षण कृषि मिट्टी और पर्यावरणीय स्वास्थ्य के बचाव और सुधार के लिए एक वैकल्पिक कृषि क्रिया के रूप में आई है। यह कृषि की वह पद्धति है जिसके अन्तर्गत संसाधन संरक्षण तकनीक की सहायता से टिकाऊ उत्पादन स्तर के साथ-साथ पर्यावरण संरक्षण को ध्यान में रखते हुये फसल उत्पादन लिया जाता है। जैविक कार्बन स्वस्थ मिट्टी का एक महत्वपूर्ण घटक है जो कृषि उत्पादन की उत्पादकता और दीर्घकालिक स्थाइत्व रखरखाव के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। जैविक कार्बन का प्रबंधन मुख्य रूप से निवेश-उत्पादन संबंधों को संशोधित करने पर निर्भर करता है, यानी निवेश में कमी या नुकसान को कम करके, या दोनों के संयोजन से। मृदा जैविक कार्बन और नाइट्रोजन से बहुत अधिक परस्पर जुड़े होते हैं और दोनों मिट्टी के स्वास्थ्य के रखरखाव में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इन दोनों में से किसी का भी असंतुलित प्रबंधन मृदा स्वास्थ्य और उत्पादकता को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करता है, तथा इससे जलवायु परिवर्तन भी प्रभावित होता है। संरक्षण कृषि प्रणाली को अपनाने से पर्यावरण एवं संसाधन दोनों का संरक्षण होता है। न्यूनतम जुताई, फसल अवशेष का स्थायी आवरण तथा फसल विविधिकरण अपनाने से मृदा एवं जल संसाधनों की गुणवत्ता और फसल की उत्पादक क्षमता बढ़ती है। फसल अवशेष से जैव विविधता, जैविक गतिविधियों एवं वायुवीय गुणवत्ता में बढ़ोत्तरी होती है। यह कार्बन को संचय (सिक्वेस्ट्रेशन) करने एवं मृदा तापमान को नियंत्रित करने में भी सहायक होती है। मृदा सतह पर उपस्थित फसल अवशेष मृदा सतह पर बहने वाले पानी (रन ऑफ) और हवा की गति को कम कर देते हैं जिससे मिट्टी के महीन कणों का ऊपरी सतह से विस्थापन एवं मृदा कार्बनिक पदार्थों का क्षरण बहुत कम हो जाता है। फसल अवशेष मृदा सतह से पानी का वाष्पीकरण कम करने में सहायक होते हैं जिससे अधिक समय के लिए मृदा में नमी बनी रहती है। संरक्षण कृषि आधारित फसल प्रणालियों को अपनाकर पर्यावरण को प्रदूषित होने से बचाया जा सकता है तथा साथ ही उपलब्ध संसाधनों को समुचित उपयोग में भी लाया जा सकता है। संरक्षण कृषि में हैप्पी/टर्बो सीडर तथा रोटरी डिस्क ड्रिल की मदद से गेहूँ को धान के अवशेषों के मध्य (10 टन फसल अवशेष भार के साथ) सफलतापूर्वक बोया जा सकता है।

वैश्विक स्थिति

विश्व की जनसंख्या बढ़ने के साथ-साथ भूमि क्षरण की समस्याएँ भी बढ़ती जा रही हैं जिसकी वजह से उपजाऊ मृदा एवं अनाज के लिए विभिन्न देशों के बीच खाद्य सुरक्षा के लिए प्रतिस्पर्धा बढ़ेगी। इन समस्याओं से निपटने के लिये विश्व में भूमि क्षरण को रोकने तथा प्रकृतिक संसाधनों का इष्टत्म उपयोग एवं तरीकों पर पिछले कई वर्षों से विकल्पों की तलाश जारी है। भूमि संसाधनों का उपयोग एवं मृदा प्रबन्धन की विधियों की उत्पादन क्षमता निर्भर करती है। मृदा में कार्बनिक पदार्थों का प्रबन्धन अति महत्वपूर्ण है क्योंकि यह मृदा संरचना के स्थिरीकरण के लिए अत्यंत आवश्यक है। सघन कृषि के अन्तर्गत खेतों की लम्बे समय तक जुताई करने से अधोसतह में एक मज़बूत परत (क्रस्ट) बन जाती है जिससे मृदा संरचना पर गहरा प्रभाव पड़ता है। भारत-गंगा के मैदानी इलाकों (IGP) के धान-गेहूं फसल चक्र में विभिन्न समस्याओं को दूर करने के लिए कई संरक्षण कृषि-आधारित संसाधन संरक्षण प्रौद्योगिकियाँ जिनमें शून्य-रोपण, बेड रोपण, लेजर-एडेड भूमि समतलन आदि का उपयोग किया जाता है। संरक्षण कृषि भी गेहूं स्थापना के बाद की समयबद्धता सुनिश्चित करता है।

फसल अवशेषों में बुवाई करने वाली मशीनों के अभाव एवं किसानों द्वारा साफ-सुथरा खेत रखने की सोच के कारण सिंधु-गंगा के उत्तर-पश्चिमी मैदानी इलाकों में फसल अवशेषों से छुटकारा पाने के लिए फसल अवशेषों को पूरी तरह से जलाने की परम्परा बनी हुई है। धान के अवशेषों को जलाने से इनमें से ज़हरीली गैसें जैसे: कार्बन डाइऑक्साइड (CO), सल्फर डाइऑक्साइड (SO), नाइट्रस ऑक्साइड (NO), कार्बन मोनोऑक्साइड (CO) आदि निकलती हैं जिनसे समूचा वातावरण प्रदूषित हो जाता है एवं मृदा के पोषक तत्वों तथा जैव पदार्थों को नुकसान होता है। धान की पुआल के जलाने से कार्बन लगभग 90-99 प्रतिशत, नाइट्रोजन 80 प्रतिशत, फास्फोरस एवं पोटेशियम 20 प्रतिशत तथा सल्फर 50 प्रतिशत का नुकसान होता है। धान की पुआल में लगभग 50-55 प्रतिशत कार्बन, 0.62-068 प्रतिशत नाइट्रोजन, 0.20 0.23 प्रतिशत फास्फोरस एवं 0.78-1.15 प्रतिशत पोटेशियम होते हैं जो जलाने के उपरान्त नष्ट हो जाते हैं। धान की पुआल को जलाने पर उसमें उपस्थित कार्बन का 70, 7 एवं 07 प्रतिशत उत्सर्जन कार्बन डाइऑक्साइड, कार्बन मोनोऑक्साइड एवं मिथेन के रूप में होता है जबकि कुलनाइट्रोजन का 21 प्रतिशत हिस्सा नाइट्रस ऑक्साइड के रूप में उत्सर्जित होता है। पूरे भारत में लगभग 9281 मिलियन टन फसल अवशेषों को जला दिया जाता है जिससे काफी मात्रा में पौधों के लिए ज़रूरी पोषक तत्व नष्ट हो जाते हैं। पंजाब एवं हरियाणा में अनुमानत: 196 एवं 0.91 मिलियन टन फसल अवशेषों को प्रतिवर्ष जला दिया जाता है।

संरक्षण कृषि पारंपरिक कृषि से कैसे भिन्न है?

संरक्षण कृषि मृदा की ऊपरी व निचली सतह के अन्दर प्राकृतिक जैविक क्रियाओं को बढ़ाने पर आधारित है। संरक्षण कृषि प्रणाली में उपलब्ध संसाधनों का ईष्टतम् उपयोग एवं संरक्षण करते हुये, किसी स्थान की भौतिक, सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति के अनुसार टिकाऊ फसल उत्पादन लेने के लिए नये-नये तरीके अपनाये जाते हैं। यह तरीके तीन सिद्धान्तों पर आधारित रहते हैं जोकि निम्न हैं : मृदा की भौतिक अवस्था में न्यूनतम असंतुलन, स्थायी जैविक मिट्टी को आच्छादित करना, विविधीकरण या फसल चक्र। संरक्षण कृषि में ज़ीरो-सीड-ड्रिल, हैप्पी-सीडर, टर्बो-सीडर आदि शामिल हैं। जबकि पारंपरिक कृषि प्रथा में ज़मीन से ऊपर की फसल को निकालना शामिल है। फसल सघनीकरण के कारण भूमि में मुख्य पोषक तत्वों जैसे नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाश, सल्फर के साथ सूक्ष्म पोषक तत्वों जैसे ज़िंक, लोहा, मैंगनीज़ इत्यादि की कमी के कारण भूमि की उर्वरा शक्ति का गिरना, भू-जलस्तर में गिरावट,

[1]मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विज्ञान संभाग, भा.कृ.अनु.प., नई दिल्ली

कृषि में मज़दूरों की कमी व कृषि आयातों की बढ़ती कीमतों की वजह से पारम्परिक कृषि के अन्तर्गत उत्पादन खर्च में वृद्धि व शुद्ध मुनाफे में कमी हो रही है। जबकि दूसरी ओर संरक्षण कृषि को अपनाकर पारम्परिक कृषि की तुलना में 25-30 प्रतिशत तक समय, ईंधन व मज़दूरी की बचत की जा सकती है। पारम्परिक कृषि की मौजूदा कृषि पद्धतियों में मज़दूरों की उपलब्धता दिन प्रतिदिन घटती जा रही है व इस पर होने वाले खर्च में भी निरंतर वृद्धि हो रही है। संरक्षण कृषि में बुवाई पर होने वाले खर्च को 5000 रूपये प्रति हैक्टेयर तक आसानी से कम किया जा सकता है। संरक्षण कृषि में फलियां शामिल करने के साथ-साथ फसल को प्राथमिकता दी जाती है। फलियों की फसल के बाद, उनके अवशेषों से कार्बन-नाइट्रोजन का अनुपात मिट्टी की सतह पर आसानी से विघटित कार्बनिक पदार्थों के रूप में बनाए रखा जाता है।

मृदा कार्बनिक कार्बन और नाइट्रोजन पर संरक्षण कृषि का प्रभाव

संरक्षण कृषि में मिट्टी को स्वस्थ तथा उसकी पैदावार बनाए रखने के लिए यह महत्वपूर्ण है कि मिट्टी की सतह पर फसल अवशेषों का पर्याप्त आवरण हो। मृदा में फसल अवशेष का स्थायी आवरण होने के कारण उसमें उपस्थित सूक्ष्म जीवों की जैविक गतिविधियां बढ़ जाती हैं जिससे मृदा में कार्बनिक पदार्थो की वृद्धि होती है जिसके परिणामस्वरूप फसल को समुचित मात्रा में पोषक तत्व प्राप्त होते हैं। कार्बनिक पदार्थ का मृदा के भौतिक गुणों जैसे: मृदा संरचना, जल धारण क्षमता, मृदा भार घनत्व, उर्वरक उपयोग क्षमता, मृदा समुच्चय, मृदा पारगम्यता दर, पोषक तत्व प्रतिधारण (रिटेंशन) को फसल के जड़ीय क्षेत्र (राइजोस्फियर) में बढ़ाने में मुख्य भूमिका है। संरक्षण कृषि के अन्दर किसान का मित्र कहे जाने वाले केंचुआ की संख्या में वृद्धि होती है। फसलों की जड़ों एवं केंचुए द्वारा बनाये हुये छिद्रों में पानी एवं हवा का अनुपात (11) बना रहता है जिससे फसलों की वृद्धि एवं विकास ठीक ढंग से होता है।

फसल की उत्पादकता पर संरक्षण कृषि का प्रभाव

मृदा की सतह पर अवशेषों को रखने से मिट्टी में नमी का संरक्षण, खरपतवार नियंत्रण तथा मिट्टी की गुणवत्ता में सुधार होता है। अवशेषों को मिट्टी पर बनाए रखने से न केवल मृदा सुधार होगा बल्कि सूक्ष्म वातावरण भी फसल के अनुकूल होगा। गेहूँ की फसल में प्रकाश संशलेषण की दर 20-25 डिग्री सैल्सियस पर अधिकतम होती है तथा यह 30 डिग्री सेल्सियस के बाद तेज़ी से गिरने लगती है। गेहूँ की फसल में मार्च के महीने में तापमान के 35 डिग्री सैल्सियस से अधिक होने पर इसका सीधा प्रभाव गेहूँ की उत्पादकता पर पड़ता है जिसे हम सीमान्त ताप प्रभाव के नाम से जानते हैं। इस तापक्रम के बाद प्रत्येक डिग्री सेल्सियस की बढोत्तरी पर 4-5 प्रतिशत उपज में कमी आती है। संरक्षण आधारित कृषि करने से सीमान्त ताप प्रभाव को नियंत्रित किया जा सकता है एवं इसकी वजह से गेहूँ की फसल में होने वाले नुकसान को काफी हद तक कम किया जा सकता है। मृदा सतह पर उपस्थित फसल अवशेष तापमान को 1-3 डिग्री सैल्सियस तक कम करने में सक्षम होते हैं जिससे फसल के सूक्ष्म पर्यावरण में तापमान गेहूँ की ज़रूरत के अनुसार बना रहता है। फसल अवशेषों की वजह से कम होने वाला तापमान मृदा सतह पर उपस्थित अवशेष भार पर निर्भर करता है। सीमान्त ताप की वजह से समय पूर्व परिपक्वता के कारण गेहूँ के दाने सिकुड़ जाते हैं जिसकी वजह से कम उत्पादन प्राप्त होता है। दानों की गुणवत्ता एवं आकार खराब होने से अच्छे बाज़ार भाव नहीं मिलते हैं जिसकी वजह से किसान को भारी नुकसान उठाना पड़ता है।

संरक्षण कृषि के लिए महत्वपूर्ण प्रबंधन तकनीकियाँ

भूमि का लेजर समतलीकरण (लेजर लैंड लेवलिंग) : समान रूप से पानी का वितरण सुनिश्चित करने के लिए खेत को सावधानी पूर्वक समतल करना आवश्यक है जिससे पानी की गहराई खेत में एक समान बनी रहे। समतल खेत में जल इकट्ठा नहीं हो पाता तथा उसकी निकासी भी आसानी से हो जाती है। समतलीकरण द्वारा पादप पोषक तत्वों का बेहतर उपयोग एवं उच्च जल उपयोगी क्षमता सुनिश्चित होती है। समतलीकरण के उद्देश्य को पूरा करने हेतु नवविकसित तकनीक लेजर लैण्ड लेवलर का प्रयोग अत्यधिक लाभकारी सिद्ध हुआ है। संसाधन संरक्षण तकनीकियों से फसलों में उच्चतम् परिणाम तभी आते हैं जब किसान आवश्यकतानुसार लेजर भूमि समतलीकरण के बाद कृषि करता है। सतही सिंचाई क्षेत्रों में यह आवश्यक है कि सतह उपयुक्त रूप से समतल हो व उसमें उचित ढ़लान हो ताकि सिंचाई प्रक्रिया सुचारू हो। सतही सिंचित क्षेत्रों के समतलीकरण के लिए लेजर निर्देशित उपकरणों का उपयोग आर्थिक रूप से संभव हो गया है। इन सुविधाओं का किराये पर उपलब्ध होने की वजह से इनका प्रयोग छोटे किसान भी कर सकते हैं। लेजर भूमि समतलीकरण से क्षेत्र की असमानता 20 मिलीमीटर तक कम हो जाती है। परिणामत: सिंचित क्षेत्र में 2 प्रतिशत व फसल क्षेत्र में 3-4 प्रतिशत तक वृद्धि होती है। इसके अतिरिक्त जल प्रयोग व वितरण की दक्षता में 35 प्रतिशत तक सुधार होता है। सिंचाई जल उत्पादकता, उर्वरक उपयोग दक्षता एवं फसल पकाव में सुधार होता है व खरपतवार दबाव कम होता है। विभिन्न क्षेत्रों में इस तकनीकी का प्रसारण तेज़ी से हो रहा है जो इस तकनीक की स्वीकार्यता एवं वैधता को दर्शाता है।

बेड प्लान्टिंग : भूमि रूपान्तरण में परिवर्तन के रूप में बैड प्लान्टिंग को सिंचित पारीस्थितिकी में संसाधन संरक्षण तकनीक के रूप में प्रयोग किया जा रहा है। बैड प्लान्टिंग का अर्थ है वह प्लान्टिंग सिस्टम जिसमें फसल को मेड़ों पर लगाया जाता है व सिंचाई खूड्डों में दी जाती है। सिमिट ने एक स्थाई फरो सिंचित रेज्ड बैड प्लान्टिंग तकनीक विकसित की है। फरो सिंचित रेज्ड बैड प्लान्टिंग तकनीक ने किसानों में पकड़ हासिल की है क्योंकि यह 25-40 प्रतिशत जल, 25 प्रतिशत पोषक तत्व व 20-30 प्रतिशत बीज बचाती है। इन सबके अतिरिक्त यह प्लान्टिंग विधि जड़ वातावरण में बदलाव लाती है और जड़ क्षेत्र में वायु संचार को सुधारती है। संरक्षण कृषि में इन बैड्स को स्थायी बैड्स में बदल दिया गया है और जुताई के कार्यक्रम को एकल कार्य तक सीमित कर दिया है, जिसमें बुवाई, सफाई व फरो को रिशेपिंग एक साथ ही करते हैं। वर्षा आधारित क्षेत्रों में बैड प्लान्टिंग में फसल लगाने पर फसलों की उपज में वृद्धि होती है जबकि सिंचित क्षेत्रों में उपज लगभग बराबर होती है।

फसल विविधिकरण एवं टिकाऊ फसल प्रणालियां

धान-गेहूँ फसल चक्र में मूंग को शामिल करके फसल प्रणाली उत्पादकता के साथ-साथ भूमि की उर्वरा शक्ति एवं खरपतवार नियंत्रण दक्षता को भी बढ़ाया जा सकता है। वहीं दूसरी ओर धान के स्थान पर मक्का को लगाने से घटते भू-जलस्तर एवं मज़दूरों की कमी जैसी समस्याओं से निजात पायी जा सकती है। धान-गेहूँ की स्थापन विधि में बदलाव करके धान में कद्दू करके रोपाई करने की बजाय धान की सीधी

(शेष पृष्ठ 24 पर)

केंचुआ खाद : विधि, उपयोग व लाभ

- मुकेश कुमार, राजेश कुमार एवं अमित कुमार
सब्जी विज्ञान विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय प्रांगण, हिसार

केंचुआ द्वारा जैव-विघटनशील व्यर्थ पदार्थों के भक्षण तथा उत्सर्जन से उत्कृष्ट कोटि की कम्पोस्ट (खाद) बनाने को वर्मी कम्पोस्टिंग कहते हैं। इसकी खूबियों के कारण ही इसे प्रकृति का हलवाहा कहा जाता है। वर्मी कम्पोस्ट को मिट्टी में मिलाने से मिट्टी की उर्वरा शक्ति तो बढ़ती ही है, साथ ही साथ फसलों की पैदावार व गुणवत्ता में भी बढ़ोत्तरी होती है। रासायनिक उर्वरकों के अत्यधिक इस्तेमाल से मृदा पर होने वाले दुष्प्रभावों का वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग से सुधार होता है। इस प्रकार वर्मीकम्पोस्ट भूमि की भौतिक, रासायनिक व जैविक दशा में सुधार कर मिट्टी की उपजाऊ शक्ति कोटि का ऊकर ने में भी महत्वपूर्ण योगदान देता है। अनुमानत: 1 कि.ग्रा. भार में 1000 से 1500 केंचुए होते हैं। प्राय: 1 केंचुआ 2 से 3 कोकून प्रति सप्ताह पैदा करता है। तत्पश्चात हर कोकून से 3-4 सप्ताह में 1 से 3 केंचुए निकलते हैं। एक केंचुआ अपने जीवन में लगभग 250 केंचुए पैदा करने की क्षमता रखता है। नवजात केंचुआ लगभग 6-8 सप्ताह पर प्रजननशील अवस्था में आ जाता है। प्रतिदिन एक केंचुआ लगभग अपने भार के बराबर मिट्टी खाकर कम्पोस्ट में परिवर्तित कर देता है। एक कि.ग्रा. केंचुए एक वर्गमीटर क्षेत्र में 45 किलोग्राम अपघटनशील पदार्थों से 25 से 30 कि.ग्रा. वर्मीकम्पोस्ट 60 से 70 दिनों में तैयार कर देते हैं।

परिचय : खाद्य अपशिष्ट को वर्मी डाइजेस्टर में डालकर निर्मित वर्मीकम्पोस्ट (केंचुआ खाद) केंचुआ कृषकों का मित्र और 'भूमि की आंत कहा जाता है। यह सेन्द्रिय पदार्थ (ऑर्गेनिक पदार्थ), ह्यूमस व मिट्टी को खाकर ज़मीन के अंदर अन्य परतों में फैलाता है इससे ज़मीन पोली होती है और हवा का श्रवण बढ़ जाता है, और जलधारण की क्षमता भी बढ़ जाती है। केंचुए के पेट में जो रासायनिक क्रिया व सूक्ष्म जीवाणुओं की क्रिया होती है, उसके भूमि में पाए जाने वाले नत्रजन, स्फुर (फॉस्फोरस), पोटाश, कैल्शियम व अन्य सूक्ष्म तत्वों की उपलब्धता बढ़ती है। ऐसा पाया गया है कि मिट्टी में नत्रजन 7 गुना, फास्फोरस 11 गुना और पोटाश 14 गुना बढ़ जाता है।

केंचुए अकेले ज़मीन को सुधारने और उत्पादकता बढ़ाने में सहायक नहीं होते हैं बल्कि उनके साथ सूक्ष्म जीवाणु, सेन्द्रित पदार्थ, ह्यूमस इनका कार्य भी महत्वपूर्ण है।

केंचुए सेन्द्रिय पदार्थ, और मिट्टी खाने वाले जीव हैं जो सेप्रोफेगस वर्ग में आता है। इस वर्ग में दो प्रकार के केंचुए होते हैं : -

(1) **डेट्रीटीव्होरस** - डेट्रीटीव्होरस ज़मीन के ऊपरी सतह पर पाया जाता है। ये लाल चाकलेटी रंग, चपटी पूंछ के होते हैं इनका मुख्य उपयोग खाद बनाने में होता है। ये ह्यूमस फमर केंचुए कहे जाते हैं।

(2) **जीओफेगस** - जीओफेगस केंचुए ज़मीन के अंदर पाए जाते हैं। ये रंगहीन बंद रहते हैं। ये ह्यूमस और मिट्टी का मिश्रण बनाकर ज़मीन पोली करते हैं।

वर्मीकम्पोस्ट बनाने की विधि

केंचुओं का चयन: वर्मीकम्पोस्टिंग में केंचुओं की उन प्रजातियों का चयन किया जाता है जिन में प्रजनन व वृद्धि दर तीव्र हो, प्राकृतिक तापमान के उतार चढ़ाव सहने की क्षमता हो तथा कार्बनिक पदार्थों को शीघ्रता से कम्पोस्ट में परिवर्तित करने की क्षमता हो। उदाहरणतया आइसीनियाँफीटिडा, यूडिलस, यूजेनी तथा पेरियोनिक्स एक स्केवेटस। उन्ना वजन पद के आस-पास के क्षेत्रों में आइसीनियाँफीटिडा वर्मीकम्पोस्टिंग के लिए उपयोगी पाये गये हैं।

वर्मीकम्पोस्टिंग योग्य पदार्थ : इस प्रक्रिया के लिए समस्त प्रकार के जैव-क्षतिशील कार्बनिक पदार्थ जैसे गाय, भैंस, भेड़, गधा, सूअर तथा मुर्गियों आदि का मल, बायो गैस स्लरी, शहरी कूड़ा, प्रौद्योगिक खाद्यान्न व्यर्थ पदार्थ, फसल अवशेष, घास-फूस व पत्तियाँ, रसोई घर का कचरा आदि का उपयोग किया जा सकता है।

कम्पोस्टिंग: कम्पोस्टिंग किसी भी प्रकार के पात्र जैसे मिट्टी या चीनी के बर्तन, वाशवेसिन, लकड़ी के बक्से, सीमेन्ट के टैंक इत्यादि में किया जा सकता है। गड्ढों या बेड की लम्बाई-चौड़ाई उपलब्ध स्थान के अनुसार निर्धारित करें। इनकी गहराई या ऊंचाई 50 सैं.मी. से अधिक न रखें। कम्पोस्टिंग के लिए सब से नीचे की सतह 5 सैं.मी. मोटे कचरे (घास-फूस, केले के पत्ते , नारियल के पत्ते, फसलों के डंठल आदि) की तह बिछायें। इसे तह पर सड़े हुए गोबर की 5 सैं.मी. की तह बनायें तथा पानी छिड़क 1000-1500 केंचुए प्रतिमीटर की दर से छोड़ें। इसके ऊपर सड़ा गोबर और विभिन्न व्यर्थ पदार्थ जिन से खाद बनाना चाहते (10:3 के अनुपात में) आंशिक रूप से सड़ाने के बाद डालें तथा टाट या बोरी से ढक दें। इस पर पानी का प्रतिदिन आवश्यकतानुसार छिड़काव करें ताकि नमी का स्तर 40 प्रतिशत से ज़्यादा रहे। कम्पोस्टिंग हेतु छायादार स्थान का चुनाव करें जहाँ पानी न ठहरता हो।

कम्पोस्ट एकत्रीकरण : साधारणतया 60 से 70 दिन में कम्पोस्ट बनकर तैयार हो जाती है। इस अवस्था में पानी देना बन्दकर दें जिस से केंचुए नीचे चले जायें। तब कम्पोस्ट को एकत्रकर, छानकर केंचुए अलग करें तथा छाया में सुखाकर प्लास्टिक की थैलियों में भर कर सील कर दें।

वर्मीकम्पोस्ट का उपयोग

- वर्मीकम्पोस्ट को खेत तैयार करते समय मिट्टी में मिलायें।
- खाद्यान्न फसलों में वर्मीकम्पोस्ट 5 टन/हैक्टेयर की दर से उपयोग करें।
- सब्जी वाली फसलों में वर्मीकम्पोस्ट का उपयोग 10-12 टन प्रति हैक्टेयर करें।
- फलदार वृक्षों में 1 से 10 किग्रा. आयु व आवश्यकतानुसार तने के चारों तरफ घेरा बनाकर डालें।
- गमलों में 100 ग्राम प्रति गमले की दर से उपयोग करें।

वर्मीकम्पोस्ट के लाभ

1. वर्मीकम्पोस्ट, सामान्य कम्पोस्टिंग विधि से एक तिहाई समय (2 से 3 माह) में ही तैयार हो जाता है।
2. वर्मीकम्पोस्ट में गोबर की खाद (एफ.वाई.एम.) की अपेक्षा नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश तथा अन्य सूक्ष्म तत्व अधिक मात्रा में पाये जाते हैं।
3. वर्मीकम्पोस्ट के सूक्ष्मजीव, एन्जाइम्स, विटामिन तथा वृद्धि वर्धक हार्मोन प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं।
4. केंचुआ द्वारा निर्मित खाद को मिट्टी में मिलाने से मिट्टी की उपजाऊ एवं उर्वरा शक्ति बढ़ती है, जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव पौधों की वृद्धि पर पड़ता है।
5. वर्मीकम्पोस्ट वाली मिट्टी में भू-क्षरण कम होता है तथा मिट्टी की जलधारण क्षमता में सुधार होता है।
6. खेतों में केंचुओं द्वारा निर्मित खाद के उपयोग से खरपतवार व कीड़ों का प्रकोप कम होता है तथा पौधों की रोग प्रतिरोधक क्षमता भी बढ़ती है।
7. वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग से फसलों पर रासायनिक उर्वरकों तथा कीटनाशकों की मांग कम होती है जिससे किसानों का इन पर व्यय कम होता है।
8. वर्मीकम्पोस्ट से प्राकृतिक संतुलन बना रहता है, साथ ही भूमि, पौधों या अन्य प्राणियों पर कोई दुष्प्रभाव नहीं पड़ता।

वर्मीकम्पोस्टिंग में विशेष सावधानियां

- आंशिक रूप से सड़े कार्बनिक व्यर्थ पदार्थों का उपयोग ही करें क्योंकि इस कम्पोस्टिंग प्रकिया में तेज़ी आती है।
- कम्पोस्टिंग बेड में मौसम के अनुसार नमी का स्तर बनाए रखें।
- कम्पोस्टिंग बेड या गड्ढे को धूप व वर्षा से बचायें।
- कल्चर बेड को जूट की बोरी या पुआल से ढककर रखें।

निष्कर्ष : इस तरह आप अपने पौधों, सब्जियों और फसल के लिए छोटे और बड़े स्तर पर केंचुआ खाद तैयार कर सकते हैं। इसके इलावा अपनी भूमि को भी रासायनिक और कीटनाशकों के दोहन से बचा सकते हैं।

बाजरा खाने के बेमिसाल फायदे

- संतोष रानी, पूनम यादव[1] एवं संदीप भाकर
कृषि विज्ञान केंद्र, फतेहाबाद
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

पुराने ज़माने में लोग मोटा अनाज जैसे जौ, चना, बाजरा खाना पसंद करते थे, लेकिन अब समय बदल गया है। आज की पीढ़ियों के लोग सिर्फ गेंहू से बनी रोटी ही खाना पसंद करते हैं, क्योंकि वह नहीं जानते कि पहले वाले इन मोटे अनाजों में कितनी पौष्टिकता होती थी। बाजरा भी उन्हीं में से एक है, जिसको खाने से ढेरों फायदे होते हैं। भले ही लोग बाजरा खाने से कतराते हों, लेकिन शायद वह इस बात से बेखबर हैं कि इसमें अन्य अनाजों की अपेक्षा प्रोटीन और आयरन प्रचुर मात्रा में होता है। इसमें वह सभी गुण होते हैं, जिससे स्वास्थ्य ठीक रहता है। डॉक्टर भी इस बात को मानते हैं कि अन्य अनाजों की अपेक्षा बाजरा में प्रोटीन, आयरन, ज़िंक, कैल्शियम की मात्रा ज़्यादा होती है। स्वस्थ शरीर के लिए बाजरा में सारे तत्व पाए जाते हैं। इसलिए आप अगर बाजरा की रोटी खाना पसंद नहीं करते हैं तो अब पंसद करना शुरू कर दीजिए, क्योंकि इससे आप के शरीर को कई पोषक तत्व मिलेंगे, जिनसे आप स्वस्थ रहते हैं।

ग्रामीण इलाकों में जाड़ों में बाजरा से बनी रोटी व टिक्की को सबसे ज़्यादा पसंद किया जाता है। क्योंकि बाजरा प्राकृतिक रूप से गरम होता है। इसको खाने से गठिया, बाव, दमा और आर्थराइटिस जैसी समस्या नहीं होती है। तो आईये जानते हैं बाजरे से मिलने वाले इसके कई और मुख्य फायदों के बारे में जिनसे आपकी बड़ी परेशानियां कम हो सकती हैं।

- बाजरे की रोटी का स्वाद जितना अच्छा है, उससे अधिक उसमें गुण भी हैं।
- बाजरे की रोटी खाने से सेहत स्वस्थ रहती है, अगर गेहूं या फिर चावल की बात करें तो बाजरे में ऊर्जा का स्तर उनसे कई गुणा ज़्यादा पाया जाता है। बाजरे में कैल्शियम भरपूर होता है, जिससे हड्डियों की परेशानी दूर होती है।
- बाजरे की रोटी खाने वाले को हड्डियों में कैल्शियम की कमी से पैदा होने वाला रोग आस्टियोपोरोसिस और हड्डियों के रोग नहीं होंगे। बाजरे में भरपूर कैल्शियम होता है, जो हड्डियों के लिए रामबाण औषधि है। खासतौर पर गर्भवती महिलाओं को कैल्शियम की गोलियां खाने के स्थान पर रोज़ बाजरे की दो रोटी खानी चाहिएं।
- बाजरे में आयरन भी इतना अधिक होता है कि खून की कमी या खून की कमी से होने वाले रोग एनीमिया भी नहीं होते हैं।
- इतना ही नहीं बाजरे का सेवन करने वाली महिलाओं में प्रसव में असामान्य पीड़ा के मामले भी न के बराबर पाए गए।
- बाजरा लीवर से संबंधित रोगों को भी कम करता है। लीवर की सुरक्षा के लिए भी बाजरा खाना लाभकारी है।
- डाक्टर तो बाजरे के गुणों से इतने प्रभावित हैं कि इसे अनाजों में 'वज्र' की उपाधि देने में जुट गए हैं।
- बाजरे का किसी भी रूप में सेवन लाभकारी है।
- उच्च रक्तचाप, हृदय की कमज़ोरी, अस्थमा से ग्रस्त लोगों तथा दूध पिलाने वाली माताओं में दूध की कमी के लिये यह टॉनिक का कार्य करता है।
- यदि बाजरे का नियमित रूप से सेवन किया जाय तो यह कुपोषण, क्षरण सम्बन्धी रोग और असमय वृद्ध होने की प्रक्रियाओं को दूर करता है।
- बाजरे की खपत से शरीर प्राकृतिक रूप से शान्त होता है। यह एंग्जायटी, डिप्रेशन और नींद न आने की बीमारियों में फायदेमन्द होता है। यह माइग्रेन के लिये भी लाभदायक है।
- इसमें लेसिथिन और मिथियोनिन नामक अमीनो अम्ल होते हैं जो अतिरिक्त वसा को हटा कर कोलेस्ट्रॉल की मात्रा को कम करते हैं।
- बाजरे में उपस्थित रसायन पाचन की प्रक्रिया को धीमा करते हैं। डायबिटीज में यह रक्त में शक्कर की मात्रा को नियन्त्रित करने में सहायक होता है।
- बाजरे को किसी भी रूप में खाया जा सकता है। आप चाहें तो बाजरे की खिचड़ी, चाट बाजरा राब, बाजरे की पूरी, बाजरे की मीठी घुघरी, पकोड़े, कचोरी चाट, बाटी, मठरी, हलवा, बर्फी, बिस्कुट, केक, बाजरे के लड्डू आदि के रूप में बना के खा सकते हैं। ।

[1]कृषि विज्ञान केंद्र, महेंद्रगढ़

(पृष्ठ 22 का शेष)

बिजाई एक लाभकारी विकल्प हो सकता है। धान आधारित फसल चक्र को अधिक लाभकारी बनाने के लिये कम अवधि के धान के बाद आलू व मक्का या सूरजमुखी को शामिल किया जा सकता है। सिंधु-गंगा के मैदानी इलाकों में धान-गेहूँ फसल प्रणाली का अन्य फसलों के साथ सघनीकरण करने से पारम्परिक धान-गेहूँ फसल चक्र की अपेक्षा अधिक उत्पादकता व शुद्ध लाभ प्राप्त किया जा सकता है। गन्ने की फसल को अक्तूबर माह में अन्त:वर्तीय फसलों (गेहूँ, सरसों, प्याज़, लहसुन, धनिया व अन्य दलहनी व तिलहनी फसलें इत्यादि) के साथ सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। ऐसा करने से गन्ने के उत्पादन के अलावा फसलों से अतिरिक्त आय भी प्राप्त हो जाती है। अत: गन्ने के साथ फसलें उगाकर दोहरा लाभ प्राप्त करके गन्ना आधारित फसल चक्रों को अधिक टिकाऊ बनाया जा सकता है।

मल्चिंग

ज़मीन की सतह पर फसल अवशेष छोडने से उगने वाले खरपतवारों को भौतिक बाधा उत्पन्न होती है। ज़ीरो-टिलेज विधि (फसल अवशेषों के साथ) खरपतवारों के बीजों को खाने वाले परभक्षियों की मात्रा को बढ़ावा देती है जोकि खरपतवार के बीज भंड़ार को कम करने में सहायक होते हैं। धान के फसल अवशेष गेहूँ की फसल में मंडूसी (फ्लेरिस माइनर) के अंकुरण एवं वृद्धि को रोकते हैं।

स्टेल बीज शय्या तकनीक

इस तकनीक का प्रयोग धान की सीधी बुवाई वाले क्षेत्रों में खरपतवार को कम करने के लिए किया जाता है। इस विधि में धान की बुवाई के एक महीने पहले एक या दो सिंचाई देकर खरपतवार के बीजों को उगने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है और उसके बाद गैर चयनात्मक शाकनांशक का छिड़काव बुवाई के 5-7 दिन पहले करके मार दिया जाता है। इस विधि से पिछले सत्र के स्वयंसेवक धान (वोल्यूटर राइस) एवं जंगली धान को भी नियंत्रित किया जा सकता है। ।

फसल अवशेष प्रबन्धन

- **अभिलाष सिंह मौर्य, सूबे सिंह[1] एवं जोगिन्दर सिंह मलिक**
प्रसार शिक्षा विभाग
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

हमारे देश में सामान्य तौर पर यह देखा गया है कि फसलों के अवशेषों का उचित प्रबन्धन करने पर न ही किसान भाइयों द्वारा और न ही सरकारों द्वारा कोई विशेष ध्यान दिया जाता है या कह सकते हैं कि फसलावशेषों का उपयोग मृदा मे कार्बनिक जीवांश पदार्थ तथा नाइट्रोजन इत्यादि की मात्रा बढ़ाने के लिए नहीं किया जाता है बल्कि इनका अधिकतर हिस्सा दूसरे घरेलू उपयोग में किया जाता है या फिर उन्हें विभिन्न तरीकों से नष्ट कर दिया जाता है। पिछले कुछ वर्षों में एक समस्या मुख्य रूप से देखी जा रही है कि जहां हार्वेस्टर के द्वारा फसलों की कटाई की जाती है उन खेतों में फसलों के तनों का अधिकतर भाग खेत में छूट जाता है और खड़े रह जाते हैं ठूंठ जिसे किसानों द्वारा आग लगाकर जला दिया जाता है। जिसका तत्कालिक प्रभाव यह होता है कि देश के अनेक प्रदेशों मे धुन्ध छाने की समस्या अत्यधिक बढ़ जाती है। मौसम वैज्ञानिक इसका मुख्य कारण खेतों मे बचे हुए अवशेषों को जलाना मान रहे हैं। जबकि यदि इन बचे हुए फसलावशेषों को सही ढंग से खेती में ही उपयोग कर लिया जाये तो इसके द्वारा हम पोषक तत्वों तथा जीवांश पदार्थो के एक बहुत बड़े अंश की पूर्ति कर सकते हैं।

फसलावशेषों को न जलाने के लाभ

- एकीकृत पोषक तत्व प्रबन्धन के घटक के रूप में फसलावशेषों के उपयोग के फलस्वरूप मृदा में कार्बनिक पदार्थो की बढ़ोत्तरी से मृदा में प्राकृतिक रूप से पाए जाने वाले विभिन्न जीवाणुओं की क्रियाशीलता बढ़ती है जिससे मृदा की उत्पादन क्षमता तथा उत्पाद की गुणवत्ता में वृद्धि होती है।
- फसलावशेषों के उचित प्रबन्धन से वातावरण में उत्पन्न होने वाली विभिन्न विपरीत परिस्थितियों से बचा जा सकता है।
- दलहनी फसलों के फसल अवशेष मृदा में नाइट्रोजन तथा अन्य पोषक तत्वों की मात्रा को बढ़ाने में सहायक होती है।
- फसलों के अवशेषों का उपयोग कम्पोस्ट खाद बनाने में सहायक होती है जो कि मृदा की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक क्रियाओं में लाभदायक होती है।
- पादप अवशेषों का उपयोग मल्च या आवरण के रूप में करने से मृदा जल संरक्षण के साथ-साथ फसलों को खरपतवारों से भी बचाने में सहायक होती है।
- मृदा के जीवांश पदार्थो में हो रहे लगातार ह्रास को कम करने में महत्वपूर्ण योगदान देता है।
- मृदा जलधारण क्षमता तथा मृदा वायु संचार में बढ़ोत्तरी होती है।
- मृदा संरचना में सुधार होता है।

फसल अवशेष को जलाने पर हानियां

- फसलों के अवशेषों को जलाने से उनके जड़, तना तथा पत्तियों में उपस्थित लाभदायक पोषक तत्व नष्ट हो जाते हैं।
- फसलों के अवशेषों को जलाने से मृदा के तापमान में वृद्धि होती है जिसके कारण मृदा के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक दशा पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।
- पादप अवशेषों के साथ-साथ लाभदायक कीट भी जलकर मर जाते हैं जिसके कारण वातावरण पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।
- पशुओं के चारे की व्यवस्था प्रभावित होती है।
- जहाँ पर कम्बाइन का प्रयोग फसलों की कटाई के लिए किया जाता है वहां पर फसलों के अवशेष डंठल के रूप में खड़े रह जाते हैं एवं उनके जलाने पर नज़दीक के किसानों की फसलों में तथा आबादी में आग लगने की सम्भावना बनी रहती है।
- वायु प्रदूषण से किसान, उनके परिवार तथा अन्य गाँव वासी आँख तथा साँस के रोगों से ग्रसित हो जाते हैं।

फसल अवशेषों को जलाने पर दण्ड

माननीय राष्ट्रीय हरित प्राधिकरण ने फसल के अवशेषों को जलाना एक दण्डनीय अपराध घोषित कर दिया है। फसलावशेषों को जलाने पर निम्नलिखित दण्ड अथवा सज़ा का प्रावधान किया गया है :

- कृषि भूमि का क्षेत्र 02 एकड़ से कम होने की दशा में आर्थिक दण्ड रुपये 2500/- प्रति घटना।
- कृषि भूमि का क्षेत्र 02 एकड़ से अधिक किन्तु 05 एकड़ से कम होने की दशा में आर्थिक दण्ड रुपये 5000/- प्रति घटना।
- कृषि भूमि का क्षेत्र 05 एकड़ से अधिक होने की दशा में आर्थिक दण्ड रुपये 15000/- प्रति घटना।
- कम्बाइन हार्वेस्टिंग मशीन का रीपर के बिना प्रयोग पूर्णतया प्रतिबन्धित कर दिया गया है।
- कृषि अवशेषों के जलाये जाने की पुनरावृत्ति होने की दशा में (लगातार दो घटनायें होने की दशा में) सम्बन्धित किसानों को सरकार द्वारा प्रदान की जाने वाली समस्त सुविधाएं यथा सब्सिडी इत्यादि से वंचित किये जाने की कार्यवाही का निर्देश राष्ट्रीय हरित प्राधिकरण नई दिल्ली द्वारा दिए गए हैं।

फसल अवशेषों को उपयोग करने के तरीके

फसल अवशेषों का प्रबन्ध करना अत्यन्त आवश्यक है, जिससे न सिर्फ हम ज़मीन में जीवांश पदार्थ की मात्रा में वृद्धि कर मृदा को भविष्य में खेती योग्य सुरक्षित रख सकते हैं अपितु पर्यावरण प्रदूषण तथा साँस से सम्बन्धित बीमारियों को भी कम कर सकते हैं।

- फसल अवशेषों का खेत पर ही उचित प्रबन्धन करने के लिए रोटावेटर जैसी मशीनों का उपयोग करना चाहिए, जिससे खेत को तैयार करते समय एक बार में ही समस्त फसलावशेषों को बारीक टुकड़ों मे काटकर मिट्टी मे आसानी से मिलाया जा सकता है।
- फसल अवशेषों के उचित प्रबन्धन के लिए आवश्यक है कि अवशेष को खेत में जलाने की अपेक्षा उनसे कम्पोस्ट तैयार करके खेत में प्रयोग किया जाये। उन क्षेत्रों मे जहाँ चारे की कमी नहीं होती वहाँ मक्का, ज्वार, बाजरा इत्यादि की कड़वी तथा धान के पुआल एवं गेहूं के भूसे को खेत में ढेर बनाकर खुला छोड़ने के बजाय गड्ढों में कम्पोस्ट बनाकर उपयोग करना चाहिए।
- कृषकों द्वारा खरीफ, रबी तथा जायद की फसलों की कटाई तथा मड़ाई के उपरान्त जड़, तना तथा पत्तियों के रूप में पादप अवशेष भूमि के अन्दर एवं भूमि के ऊपर उपलब्ध रह जाते हैं। इनको यदि लगभग 20 किग्रा यूरिया प्रति एकड़ की दर से मिट्टी पलटने वाले हल अथवा

(शेष पृष्ठ 28 पर)

[1]विस्तार शिक्षा निदेशालय, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार।

चारा फसलों में एच.सी.एन. विषाक्तता

- राजेश कथवाल, के. डी. शर्मा एवं सतपाल[1]
रामधन बीज फार्म
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

सुडान घास, ज्वार और लोट्स प्रजाति जैसे और सफेद क्लोवर में प्राकृतिक रूप से सायनोजेनिक ग्लूकोसाइड होते हैं। जब पशु चरते हैं या फिर घास को काटा जाता है, ऐसे में पौधों के ऊतक टूट जाते हैं, ऐसा होने से काफी मात्रा में हाइड्रोसायनाइड एसिड या एच.सी.एन. उत्पन्न होता है। पशु जुगाली करने वाले पशु एच.सी.एन. विषाक्तता से ज़्यादा प्रभावित होते हैं, क्योंकि इनके पेट में उपस्थित सूक्ष्म जीव ग्लूकोसाइड को तोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। एच.सी.एन. रक्त में तुरन्त घुल जाता है और शरीर के सारे ऊतकों में मिल जाता है। कोशिकीय रेस्पिरेशन में सायटोक्रोम ऑक्सीडेस किण्वक (एंजाइम) होता है। इस किण्वक के साथ एच.सी.एन. एक जटिल अक्रियशील कम्पलैक्स बना लेता है और इस कारण से कोशिकीय स्तर पर एच.सी.एन. ऐसफिक्शेसन पैदा कर देता है। ऐसी अवस्था में ऊर्जा का निर्माण होना बंद हो जाता है और ऊतक मरने लगते हैं। 20 मिलीग्राम प्रति 100 ग्राम शुष्क पादप ऊतकों में एच.सी.एन. की मात्रा को घातक माना जाता है। एच.सी.एन. की मात्रा विषम वातावरण की परिस्थितियों में, खास कर सूखा पड़ने पर, या फिर पाला पड़ने के बाद पौधे में बढ़ जाती है। इसके बढ़ने का दूसरा कारण अत्यधिक मात्रा में नाइट्रोजन का प्रयोग करना है।

भारत में 120 से ज़्यादा पौधे ऐसे हैं जो सायनोजेनेटिक ग्लुकोसाइड होते हैं। चारा फसलों में गुणवत्ता के मुख्य कारक उपलब्ध प्रोटीन की मात्रा, पाचनशीलता व विषैले तत्वों का निम्मतम स्तर में होना है। चारा फसलों में पाए जाने वाले विषैले तत्व वे तत्व हैं जो स्वयं या उनके मैटाबोलिक उत्पाद् के उपयोग में बाधा करते हैं एवं पशुओं के स्वास्थ्य को भी नुकसान पहुँचाते हैं। इन विषैले तत्वों की सामान्य विशेषताएं इस प्रकार हैं : 1. गौण – चयउदय के उत्पाद्। 2. सभी पौधों में कुछ मात्रा में विद्यमान रहते हैं। 3. कुछ तत्व चारे में आम रूप से मिलते हैं। 4. रक्षात्मक कार्य। 5. कड़वे, रंगीन, ज़हरीले, गंधनीय, अपोषक और प्रतिरोधक क्षमता को हानि पहुँचाने वाले।

19वीं पशुगणना के अनुसार हमारे देश में 512 मिलियन पशुधन है, जिसके लिए वर्ष 2012 के आँकड़ों के अनुसार देश में 61 प्रतिशत हरे चारे व 21 प्रतिशत् सूखे चारे की कमी है। अत: सफल डेयरी प्रबन्धन के लिए उचित मात्रा में हरे व सूखे चारे का उपलब्ध होना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि गुणवत्तापूर्ण चारा भी आवश्यक है।

एच.सी.एन के विषैलेपन को कम करने की व्यवस्था

पशुओं के भूखा होने पर तुरन्त ज्वार का हरा चारा न खिलाएं बल्कि पहले सूखा चारा दें। यदि पशुओं को ज्वार के खेत में चरने के लिए छोड़ना हो तो दोपहर बाद खोलें। जब तक चारा 18 से 24 इंच की बढ़वार तक न हो तब तक पशुओं को चारा न दें। पशुओं को ज्वार को फूल आने तक की अवस्था पर खिलाना चाहिए या तब दें जब ज्वार प्रौढ़ हो जाए। पाला पड़ा ज्वार, आधा पका ज्वार या सूखा ज्चार पशुओं को नहीं खिलाना चाहिए, क्योंकि ऐसे ज्वार में सायनोजेनिक ग्लुकोसाइड की मात्रा अत्यधिक होती है। पशुओं को सल्फर चटाना चाहिए। इससे एच.सी.एन. की विषाक्तता कम हो जाती है। पशुओं को गुड़ खिलाने से भी आराम मिलता है। ये पशु एच.सी.एन. की दी गई मात्रा को झेलने में सक्षम हैं :

पशु	मिलीग्राम प्रति किलोग्राम प्रतिदिन
सूअर	2.9
पोल्ट्री	2.8
रूमीनेन्ट (बकरियों पर आधारित शोध के अनुसार)	0.25
घोड़ा	0.4

[1]चारा अनुभाग, आनुवांशिकी एवं पौध प्रजनन विभाग, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार।

जल का जीवन में महत्व और बचत के उपाय

- अमनदीप सिंह, नरेंद्र कुमार एवं सूबेसिंह[1]
कृषि अभियांत्रिक एवं प्रौद्योगिकी महाविद्यालय
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

आधारभूत पंचतत्वों में से एक जल हमारे जीवन का आधार है। जल के बिना जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती है। इसलिये कवि रहीम ने कहा है– ''रहिमन पानी राखिये बिना पानी सब सून। पानी गये न उबरै मोती मानुष चून।'' यदि जल न होता तो सृष्टि का निर्माण सम्भव न होता। यही कारण है कि यह एक ऐसा प्राकृतिक संसाधन है जिसका कोई मोल नहीं है। जीवन के लिये जल की महत्ता को इसी से समझा जा सकता है कि बड़ी-बड़ी सभ्यताएँ नदियों के तट पर ही विकसित हुईं और अधिकांश प्राचीन नगर नदियों के तट पर ही बसे। जल की उपादेयता को ध्यान में रखकर यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम न सिर्फ जल का संरक्षण करें बल्कि उसे प्रदूषित होने से भी बचायें। इस सम्बन्ध में भारत के जल संरक्षण की एक समृद्ध परम्परा रही है और जीवन के बनाये रखने वाले कारक के रूप में हमारे वेद-शास्त्र जल की महिमा से भरे पड़े हैं। ऋग्वेद में जल को अमृत के समतुल्य बताते हुए कहा गया है– अप्सु अन्त: अमृतं अप्सु भेषनं।

जल की संरचना – पूर्णत: शुद्ध जल रंगहीन, गंधहीन व स्वादहीन होता है। इसका रासायनिक सूत्र H_2O है। ऑक्सीजन के एक परमाणु तथा हाइड्रोजन के दो परमाणु बनने से H_2O अर्थात जल का एक अणु बनता है। जल एक अणु में जहाँ एक ओर धनावेश होता है वहीं दूसरी ओर ऋणावेश होता है। जल की ध्रुवीय संरचना के कारण इसके अणु कड़ी के रूप में जुड़े रहते हैं। वायुमण्डल में जल तरल, ठोस तथा वाष्प तीन स्वरूपों में पाया जाता है। पदार्थों को घोलने की विशिष्ट क्षमता के कारण जल को सार्वभौमिक विलायक कहा जाता है। मानव शरीर का लगभग 66 प्रतिशत भाग पानी से बना है तथा एक औसत वयस्क के शरीर में पानी की कुल मात्रा 37 लीटर होती है। मानव मस्तिष्क का 75 प्रतिशत हिस्सा जल होता है। इसी प्रकार मनुष्य के रक्त में 83 प्रतिशत मात्रा जल की होती है। शरीर में जल की मात्रा शरीर के तापमान को सामान्य बनाये रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

जल संकट और भारत – आबादी के लिहाज से विश्व का दूसरा सबसे बड़ा देश भारत भी जल संकट से जूझ रहा है। यहाँ जल संकट की समस्या विकराल हो चुकी है। न सिर्फ शहरी क्षेत्रों में बल्कि ग्रामीण अंचलों में भी जल संकट बढ़ा है। वर्तमान में 20 करोड़ भारतीयों को शुद्ध पेयजल उपलब्ध नहीं हो पाता है। उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, गुजरात, राजस्थान, हरियाणा, पंजाब, तमिलनाडु और केरल जैसे राज्यों में जहाँ पानी की कमी बढ़ी है, वहीं राज्यों के मध्य पानी से जुड़े विवाद भी गहराए हैं। भूगर्भीय जल का अत्यधिक दोहन होने के कारण धरती की कोख सूख रही है। जहाँ मीठे पानी का प्रतिशत कम हुआ है वहीं जल की लवणीयता बढ़ने से भी समस्या विकट हुई है। भूगर्भीय जल का अनियंत्रित दोहन तथा इस पर बढ़ती हमारी निर्भरता पारम्परिक जलस्रोतों व जल तकनीकों की उपेक्षा तथा जल संरक्षण और प्रबन्ध की उन्नत व उपयोगी तकनीकों का अभाव, जल शिक्षा का अभाव, भारतीय संविधान में जल के मुद्दे का राज्य

[1]विस्तार शिक्षा निदेशालय, चौ.च.सिं.ह.कृ.वि., हिसार।

सरकारों के अधिकार क्षेत्र में रखा जाना, निवेश की कमी तथा सुचिंतित योजनाओं का अभाव आदि ऐसे अनेक कारण हैं जिसकी वजह से भारत में जल संकट बढ़ा है। भारत में जनसंख्या विस्फोट ने जहाँ अनेक समस्याएँ उत्पन्न की हैं, वहीं पानी की कमी को भी बढ़ाया है। वर्तमान समय में देश की जनसंख्या प्रतिवर्ष 1.5 प्रतिशत की दर से बढ़ रही है। ऐसे में वर्ष 2050 तक भारत की जनसंख्या 150 से 180 करोड़ के बीच पहुँचने की सम्भावना है। ऐसे में जल की उपलब्धता को सुनिश्चित करना कितना दुरूह होगा, समझा जा सकता है। आंकड़े बताते हैं कि स्वतंत्रता के बाद प्रतिव्यक्ति पानी की उपलब्धता में 60 प्रतिशत की कमी आयी है।

जल संरक्षण एवं संचय के उपाय - जल जीवन का आधार है और यदि हमें जीवन को बचाना है तो जल संरक्षण और संचय के उपाय करने ही होंगे। जल की उपलब्धता घट रही है और मारामारी बढ़ रही है। ऐसे में संकट का सही समाधान खोजना प्रत्येक मनुष्य का दायित्व बनता है। यही हमारी राष्ट्रीय ज़िम्मेदारी भी बनती है और हम अन्तरराष्ट्रीय समुदाय से भी ऐसी ही ज़िम्मेदारी की अपेक्षा करते हैं। जल के स्रोत सीमित हैं। नये स्रोत हैं नहीं, ऐसे में जलस्रोतों को संरक्षित रखकर एवं जल का संचय कर हम जल संकट का मुकाबला कर सकते हैं। इसके लिये हमें अपनी भोगवादी प्रवृत्तियों पर अंकुश लगाना पड़ेगा और जल के उपयोग में मितव्ययी बनना पड़ेगा। जलीय कुप्रबंधन को दूर कर भी हम इस समस्या से निपट सकते हैं। यदि वर्षाजल का समुचित संग्रह हो सके और जल के प्रत्येक बूँद को अनमोल मानकर उसका संरक्षण किया जाये तो कोई कारण नहीं है कि वैश्विक जल संकट का समाधान न प्राप्त किया जा सके। जल के संकट से निपटने के लिये कुछ महत्त्वपूर्ण सुझाव यहाँ बिन्दुवार दिये जा रहे हैं-

1. प्रत्येक फसल के लिये ईष्टतम जल की आवश्यकता का निर्धारण किया जाना चाहिए तद्नुसार सिंचाई की योजना बनानी चाहिए। सिंचाई कार्यों के लिये स्प्रिंकलर और ड्रिप सिंचाई जैसे पानी की कम खपत वाली प्रौद्योगिकियों को प्रोत्साहित करना चाहिए। कृषि में औसत व द्वितीयक गुणवत्ता वाले पानी के प्रयोग को बढ़ावा दिया जाना चाहिए, विशेष रूप से पानी के अभाव वाले क्षेत्रों में।
2. विभिन्न फसलों के लिये पानी की कम खपत वाले तथा अधिक पैदावार वाले बीजों के लिये अनुसंधान को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।
3. जहाँ तक सम्भव हो ऐसे खाद्य उत्पादों का प्रयोग करना चाहिए जिसमें पानी का कम प्रयोग होता है। खाद्य पदार्थों की अनावश्यक बर्बादी में कमी लाना भी आवश्यक है। विश्व में उत्पादित होने वाला लगभग 30 प्रतिशत खाना खाया नहीं जाता है और यह बेकार हो जाता है। इस प्रकार इसके उत्पादन में प्रयुक्त हुआ पानी भी व्यर्थ चला जाता है।
4. जल संकट से निपटने के लिये हमें वर्षाजल भण्डारण पर विशेष ध्यान देना होगा। वाष्पन या प्रवाह द्वारा जल खत्म होने से पूर्व सतह या उपसतह पर इसका संग्रह करने की तकनीक को वर्षाजल भण्डारण कहते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि तकनीक को न सिर्फ अधिकाधिक विकसित किया जाय बल्कि ज़्यादा से ज़्यादा अपनाया भी जाये। यह एक ऐसी आसान विधि है जिसमें न तो अतिरिक्त जगह की ज़रूरत होती है और न ही आबादी विस्थापन की। इससे मिट्टी का कटाव भी रुक जाता है तथा पर्यावरण भी संतुलित रहता है। बंद एवं बेकार पड़े कुँओं, पुनर्भरण पिट, पुनर्भरण खाई तथा पुनर्भरण शॉफ्ट आदि तरीकों से वर्षाजल का बेहतर संचय कर हम पानी की समस्या से उबर सकते हैं।
5. वर्षाजल प्रबंधन और मानसून प्रबंधन को बढ़ावा दिया जाय और इससे जुड़े शोध कार्यों को प्रोत्साहित किया जाये। जल शिक्षा को अनिवार्य रूप से पाठ्यक्रम में जगह दी जाये।
6. जल प्रबंधन और जल संरक्षण की दिशा में जन जागरुकता को बढ़ाने का प्रयास हो। जल प्रशिक्षण को बढ़ावा दिया जाये तथा संकट से निपटने के लिये इनकी सेवाएँ ली जाएं।
7. पानी के इस्तेमाल में हमें मितव्ययी बनना होगा। छोटे-छोटे उपाय कर जल की बड़ी बचत की जा सकती है। मसलन हम दैनिक जीवन में पानी की बर्बादी कतई न करें और एक-एक बूँद की बचत करें। बागवानी जैसे कार्यों में भी जल के दुरुपयोग को रोकें।
8. औद्योगिक विकास और व्यावहारिक गतिविधियों की आड़ में जल के अंधाधुंध दोहन को रोकने के लिये तथा इस प्रकार से होने वाले जल प्रदूषण को रोकने के लिये कड़े व पारदर्शी कानून बनाये जाएँ।
9. जल संरक्षण के लिये पर्यावरण संरक्षण ज़रूरी है। जब पर्यावरण बचेगा तभी जल बचेगा। पर्यावरण असंतुलन भी जल संकट का एक बड़ा कारण है। इसे इस उदाहरण से समझ सकते हैं। हिमालय पर्यावरण के कारण सिकुड़ने लगे हैं। विशेषज्ञों के अनुसार सन 2030 तक ये ग्लेशियर काफी अधिक सिकुड़ सकते हैं। इस तरह हमें जल क्षति भी होगी। पर्यावरण संरक्षण के लिये हमें वानिकी को नष्ट होने से बचाना होगा।
10. हमें ऐसी विधियाँ और तकनीकें विकसित करनी होंगी जिनसे लवणीय और खारे पानी को मीठा बनाकर उपयोग में लाया जा सके। इसके लिये हमें विशेष रूप से तैयार किये गये वाटर प्लांटों को स्थापित करना होगा। चेन्नई में यह प्रयोग बेहद सफल रहा जहाँ इस तरह स्थापित किये गये वाटर प्लांट से रोज़ाना 100 मिलियन लीटर पानी पीने योग्य पानी तैयार किया जाता है।
11. प्रदूषित जल का उचित उपचार किया जाय तथा इस उपचारित जल की आपूर्ति औद्योगिक इकाईयों को की जाये।
12. जल प्रबंधन व शोध कार्यों के लिये निवेश को बढ़ाया जाये।
13. जनसंख्या बढ़ने से जल उपभोग भी बढ़ता है ऐसे में विशिष्ट जल उपलब्धता (प्रतिव्यक्ति नवीनीकृत जल संसाधन की उपलब्धता) कम हो जाती है। अत: इस परिप्रेक्ष्य में हमें जनसंख्या पर भी ध्यान देना होगा।
14. हमें पानी के कुशल उपयोग पर ध्यान केन्द्रित करना होगा। जल वितरण में असमानता को दूर करने के लिये जल कानून बनाने होंगे।

जल संचय की विधियां

1. **नलकूपों द्वारा रिचार्जिंग** - छत से एकत्र पानी को स्टोरेज टैंक तक पहुँचाया जाता है। स्टोरेज टैंक का फिल्टर किया हुआ पानी नलकूपों तक पहुँचाकर गहराई में स्थित जलवाही स्तर को रिचार्ज किया जाता है। उपयोग न किये जाने वाले नलकूप से भी रिचार्ज किया जा सकता है।
2. **गड्ढे खोदकर** - ईंटों के बने ये किसी भी आकार के गड्ढे का मुँह पक्की फर्श से बंद कर दिया जाता है। इनकी दीवारों में थोड़ी-थोड़ी दूर पर सुराख बनाये जाते हैं इसकी तलहटी में फिल्टर करने वाली

वस्तुएँ डाल दी जाती हैं।

3. **सोक वेज या रिचार्ज शाफ्ट्स** – इनका उपयोग वहाँ किया जाता है जहाँ मिट्टी जलोढ़ होती है। इसमें 30 सैं.मी. व्यास वाले 10 से 15 मीटर गहरे छेद बनाये जाते हैं, इसके प्रवेश द्वार पर जल एकत्र करने के लिये एक बड़ा आयताकार गड्ढा बनाया जाता है। इसका मुँह पक्की फर्श से बन्द कर दिया जाता है। इस गड्ढे में बजरी, रोड़ी, बालू, इत्यादि डाले जाते हैं।
4. **खोदे कुएँ द्वारा रिचार्जिंग** – छत के पानी को फिल्ट्रेशन बेड से गुजारने के बाद कुओं तक पहुँचाया जाता है। इस तरीके में रिचार्ज गति को बनाये रखने के लिये कुएँ की लगातार सफाई करनी होती है।
5. **खाई बनाकर** – जिस क्षेत्र में ज़मीन की ऊपरी पर्त कठोर और छिछली होती है वहाँ इसका उपयोग किया जाता है। ज़मीन पर खाई खोदकर उसमें बजरी, ईट के टुकड़े आदि को भर दिया जाता है। यह तरीका छोटे मकानों, खेल के मैदानों, पार्कों इत्यादि के लिये उपयुक्त होता है।
6. **रिसाव टैंक** – ये कृत्रिम रूप से सतह पर निर्मित जल निकाय होते हैं। बारिश के पानी को यहाँ जमा किया जाता है। इससे संचित जल रिसकर धरती के भीतर जाता है। जिससे भूजलस्तर ऊपर उठता है। संग्रहीत जल को सीधे बागवानी इत्यादि कार्यों में प्रयोग किया जा सकता है। रिसाव टैंकों को बगीचों, खुले स्थानों और सड़क के किनारे हरित पट्टी क्षेत्र में बनाया जाना चाहिए।
7. **सरफेस रनऑफ हार्वेस्टिंग** – शहरी क्षेत्रों में सतह माध्यम से पानी बहकर बेकार हो जाता है। इस बहते जल को एकत्र करके कई माध्यम से धरती के जलवाही स्तर को रिचार्ज किया जाता है।
8. **रूफ टॉप रेनवाटर हार्वेस्टिंग** – इस प्रणाली के तहत वर्षा का पानी जहाँ गिरता है वहीं उसे एकत्र कर लिया जाता है। रूफ टॉप हार्वेस्टिंग में घर की छत ही कैचमेन्ट क्षेत्र का काम करती है। बारिश के पानी को घर की छत पर ही एकत्र किया जाता है। इस पानी को या तो टैंक में संग्रह किया जाता है या फिर इसे कृत्रिम रिचार्ज प्रणाली में भेजा जाता है। यह तरीका कम खर्चीला और अधिक प्रभावकारी है।

वास्तव में आज की ज़रूरत है कि हम वर्षाजल का पूर्ण रूप से संचय करें। यह ध्यान रखना होगा कि बारिश की एक भी बूँद व्यर्थ न जाए। इसके लिये रेन वॉटर हार्वेस्टिंग एक अच्छा माध्यम हो सकता है। आवश्यकता है इसे और विकसित व प्रोत्साहित करने की। इसके प्रति जनजागृति और जागरूकता को बढ़ाना भी समाज की आवश्यकता है। ।

(पृष्ठ 25 का शेष)

रोटावेटर की सहायता से जुताई/पलेवा के समय मिला देने से पादप अवशेष लगभग 20 से 30 दिन के अन्दर ज़मीन में सड़ जाते हैं जिससे मृदा में कार्बनिक पदार्थों एवं अन्य तत्वों की बढ़ोत्तरी होती है जिसके परिणामस्वरूप फसलों के उत्पादन पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है।

- गेहूं के भूसे तथा धान के पुआल के भूसे का उपयोग मशरूम उत्पादन में सफलतापूर्वक किया जा सकता है।
- बाजरा, ज्वार, मक्का इत्यादि के हरी कड़बी का उपयोग हे (Hay) तथा साइलेज (Silage) बनाने में किया जा सकता है। ।

ढींगरी खुम्ब उत्पादनः एक लाभकारी व्यवसाय

- **मीनू[1], रूमी रावल एवं स्वाति मेहरा**
खाद्य विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी केंद्र
चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

खुम्बी एक पौष्टिक आहार है जिसमें प्रोटीन, खनिज लवण तथा विटामिन जैसे पोषक पदार्थ पर्याप्त मात्रा में पाए जाते हैं। इसमें वसा तथा कार्बोहाइड्रेट की कम मात्रा होने के कारण यह हृदय रोगियों तथा मधुमेह के रोगियों के लिए अच्छा आहार है। यह एक प्रकार की फफूँद होती है। इसमें क्लोरोफिल नहीं होता और इसको सीधी धूप की ज़रूरत भी नहीं होती बल्कि इसे बारिश और धूप से बचाकर किसी मकान या झोंपड़ी की छत के नीचे उगाया जाता है जिसमें हवा का उचित आवागमन हो।

ढींगरी एक सीप के आकार की खुम्बी होती है जो कि साधारणत: बड़ी ही आसानी से उगाई जा सकती है। स्वाद व पौष्टिकता में यह किसी भी खुम्बी से कम नहीं है और इसकी खेती भी साल में केवल कुछ महीनों को छोड़कर लगभग सारे साल की जा सकती है। सफेद बटन खुम्बी की तुलना में न केवल इसकी खेती सरल है बल्कि इसकी पैदावार भी ज़्यादा होती है। अधिक उत्पादन होने पर इसको धूप में सुखाकर इसका भंडारण भी किया जा सकता है और इससे अनेक मूल्य-संवर्धित खाद्य पदार्थ भी बनाए जा सकते हैं। इसको किसी भी कमरे या कम लागत की बांस व सरकंडे से बने हुये छप्पर में उगाया जा सकता है। गेहूं या सरसों का भूसा, धान की पुआल, केले का तना आदि को ढींगरी उगाने के लिए प्रयोग में लाया जा सकता है।

गेहूँ, सरसों या धान के भूसे को लगभग 10-12 घंटे पानी में भिगो लिया जाता है और दूसरे दिन भूसे या तूड़े को जाली पर रख दिया जाता है जिससे अतिरिक्त पानी निकल जाए। इसके बाद भीगी पुआल या भूसे में दो प्रतिशत स्पान (खुम्बी का बीज) मिलाकर उसको पॉलिथीन के लिफाफों में भर कर कमरे के अंदर किसी आधार पर एक-एक फुट की दूरी पर रखें। लिफाफे 30x45 सैं.मी या 45x60 सैं.मी आकार के हों तथा उनमें 5 से 10 सैं.मी की दूरी पर ½ x 1 सैं.मी. व्यास के छेद हों। पॉलिथीन के थैलों के स्थान पर लकड़ी की पेटी या टोकरी भी ले सकते हैं। कमरे में नमी बनाए रखने के लिए दिन में 2-3 बार साफ पानी का छिड़काव करें। व्यापारिक स्तर पर ढींगरी उत्पादन के लिए भूसे का गरम पानी से उपचार ज़रूर करें। गेहूं के भूसे या धान की पुआल या अन्य किसी तरह के अवशेष को छिद्रित जूट के थैले या बोरे में भरकर रातभर ठंडे पानी में गीला कर लिया जाता है। दूसरे दिन इस गीले भूसे का थैले सहित गरम पानी में (60-65° सेल्सियस) 20-30 मिनट डालकार निकाल लेते हैं। ठंडा होने पर इस भूसे को तारपोलीन या प्लास्टिक शीट पर फैला देते हैं ताकि इससे पानी निचुड़ जाए। यह उपचरित भूसा बिजाई के लिए तैयार है। स्पान डालने के 2-3 दिन बाद तूड़ी या पुआल में सफ़ेद-सफ़ेद धागे से दिखाई देने लग जाते हैं जो लगभग 12-13 दिन में पूरी तरह से फैलकर तूड़ी या पुआल को सफेद व कड़ा बना देते हैं। पॉलिथीन हटाने के बाद जो भूसे के खंड बाहर निकलते हैं उन्हे दोबारा एक-एक फुट की दूरी पर रख दिया जाता है। पहले की तरह कमरे के अंदर नमी रखने के लिए पानी का छिड़काव करते रहना चाहिए। स्पान मिलने के 21-25 दिन बाद खुम्बी दिखने लगती है तथा 3-4 दिन में ये तोड़ने लायक हो जाती है।

खुम्बी को मुड़ने से पहले तोड़ लेना चाहिए। ढींगरी के उत्पादन में निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए : भूसा या पुआल बारिश में भीगी न हो, पॉलिथीन के लिफाफे को ¾ से ज़्यादा न भरें, कमरे का तापमान 20-28° सेल्सियस रहना चाहिए। कम तापमान ज़्यादा नुकसान नहीं करता, कमरे में 80-90 आर्द्रता प्रतिशत होनी चाहिए, भूसा खंडों पर जब भी पानी डालें छिड़काव के रूप में डालें, कमरे में ताज़ी हवा के आने-जाने का प्रबंध होना चाहिए।नमी बनाए रखने के लिए खिड़की या रोशनदान पर गीली बोरी टांग कर रखें, कमरे में हर रोज 3-4 घंटे के लिए रोशनी दें। ।

[1]कृषि विज्ञान केंद्र, भिवानी।

Common Fertilizers Used in Haryana

- **Pooja Rani, Usha Kumari[1] and Devraj[2]**
Krishi Vigyan Kendra, Sadalpur
CCS Haryana Agricultural University, Hisar

Those materials which are either natural or manufactured and containing nutrients essential for growth and development of plants are called as fertilizers. Increase in crop production during recent time is due to fertilizer use in field crops. The production and usage of fertilizer materials are mainly centred to providing the N, P and K needs of plants. However, the micronutrient fertilizers are also gaining popularity in recent time. While, the list of fertilizers available in worker is too long but here we will discuss properties of some important and commonly used fertilizers such as :

Nitrogen Fertilizer

1. Ammonium Sulphate: It is white crystalline salt with good keeping quality in dry conditions. It contains Nitrogen (20.6%) and Sulphur (24%). It is readily soluble in water and is non-hygroscopic, however, under humid condition (rainy season) it forms lumps. As ammonium ion is readily absorbed on the colloidal complex of soil, thus, the leaching loss of this fertilizer is very less in soil and thereby making it best option for wetland crops such as paddy and jute. It has excellent physical properties and can be mixed with phosphate and potassic fertilizers. It is acid forming fertilizer and suitable for salt affected and sulphur deficient soils. Paddy takes up nitrogen in ammonical form in early stage and nitrate form in later stage. So, ammonium sulphate is best suited for basal dressing and top dressing of paddy field.

2. Urea : Urea is a cheapest source of nitrogen. It is a white crystalline product which is highly hygroscopic and has a tendency of caking. It contains 46% nitrogen in amide form. It is less acidic compared to ammonium sulphate and it can be mixed with phosphatic and potassic fertilizers. However, the mixture should be used just after preparation because water soluble P converted to water insoluble calcium phosphate. Urea can be used in every soil and for every crop. The price per unit nitrogen of urea is less than that of other fertilizers. Urea can be applied at any time i.e. before soaring at the time of sowing top dressing & foliar spray. Urea is a crystalline fertilizer so its broadcasting is very easy.

Phosphatic Fertilizers

The nutrient phosphorus present in phosphoric fertilizers is usually expressed in terms of phosphoric anhydride. The ions of phosphoric acid combine with calcium to form three salts which are sold to farmers as commercial phosphatic fertilizers. These three salts are : (1) Monocalcium phosphate (2) Dicalcium phosphate and (3) Tricalcium phosphate. The important phosphatic fertilizers are :

1. Single Super Phosphate (SSP) : It is the most commonly available grade in Indian market. The whole of P_2O_5 in super phosphate is water soluble form which is readily available to plants. It is grey or brown in colour and is available in granular as well as in powdered form. Granular SSP can be easily and uniformily applied by hand or machine but powdered SSP may cake up as it absorbs water. It contains 16% water soluble P_2O_5, 12% sulphur 21% calcium and small quantities of micronutrients. It contains some free acids so it should be packed in polyethylene or laminated jute bags which are resistant to acids. It should be stored in moisture proof godown to prevent conversion of monocalcium phosphate to dicalcium phosphate.

2. Diammonium Phosphate (DAP) : It is granular, non-hygroscopic, free flowing and has excellent physical properties. It is a complex fertilizer which contains 46% P_2O_5 and 18% Nitrogen in ammonium form and this is reason that it is most popular P-fertilizer among farmers of Haryana. It can be mixed with any fertilizer. It is highly concentrated form of P fertilizers hence, its distribution and application cost per unit of P_2O_5 is low as compared to SSP.

Potassium Fertilizers

The potassium in fertilizers expressed as K_2O (Potassium Oxide) and is commonly referred as Potash. The potassium fertilizers easily dissolve in water and split up into potassium ion (K+) and other anions. It is the K+ ion which is absorbed by growing plants. Muriate of Potash (MOP) and Sulphate of Potash (SOP) are two commonly used fertilizers by farmers of Haryana.

1. MOP (Potassium Chloride) : In pure form it is the white crystalline salt but fertilizer grade MOP ranges from white to red. It is free flowing and completely soluble in water and does not pose any problem in handling and storage. It contains 60% K_2O and its chlorine content makes it less suitable for crops like tobacco, potato, grapes and other chloride sensitive crops as their quality is lowered. Otherwise, it could be used for all crops and soils. MOP is neutral in reaction and it can be safely mixed with most of fertilizers. It should be applied either at the time of sowing or prior to it.

2. Potassium Sulphate : It is white crystalline salt and contains 50% K_2O and 18% Sulphur. Its properties are more or less same to MOP but its per unit cost of K_2O is higher than MOP which restrict its use to only chloride sensitive crops. It is a preferred K fertilizer for tobacco and potato as well as for salt affected soils because of its low salt index compared to MOP. ।

[1]Gandhi Krishi Vigyan Kendra, Banglore
[2]Krishi Vigyan Kendra, Panipat

Rainwater Harvesting – A Solution to Water Crisis

- **Manjeet, Parveen Kumar and Naveen Kumar**
Department of Agronomy
CCS Haryana Agricultural University, Hisar

Water is an extremely precious natural resource covering more than 70% earth surface. Development of human societies is heavily dependent upon the availability of freshwater in adequate quantities and with suitable qualities. All sources of freshwater on earth originate from rainfall. Increasing population together with intensifying urbanization and industrialization affects availability and results in deterioration of quality of freshwater due to discharge of pollutants. Water resource managers and water-use planners in many corners of the world have projected that within next two decades, total availability of freshwater will fall short of needs if the current trend continues unabated and rainwater harvesting is the only solution to this emerging problem of water scarcity. The concept of rain water harvesting has a long history. Evidences indicate domestic rain water harvesting having been used in the Middle East for about 3000 years and in other parts of Asia for at least 2000 years. India has a long tradition of water harvesting.

Rain water harvesting is a technique of collection and storage of rainwater that runs off from roof tops, parks, roads, open grounds, etc. into natural reservoirs or tanks, or the infiltration of surface water into sub-surface aquifers before it is lost as surface runoff and subsequently storing this water for later use.

Water harvesting in India has boomed during the last two decades in two markedly in different ways from the traditional technique. Collection and storage of rainwater in earthen tanks for domestic and agricultural uses is very common in India since historical times. The traditional knowledge and practice of rain water harvesting has largely been abandoned in many parts of India after the implementation of dam and irrigation projects.

Components of rain water harvesting system : The following are the components of rain water harvesting system :

- Catchment : It refers to the prepared surface area from which the runoff is collected.
- Collection system: This refers to the arrangement made for collecting and storing the rainfall with minimal quantitative loss.
- Utilization system : This is the arrangement required to make use of the collected rainwater for productive purposes in future.

Methods of rain water harvesting : The methods of rain water harvesting are given below:

- Storing rain water for direct use
- Recharging ground water aquifers, from roof top run off
- Recharging ground water aquifers with runoff from ground area

Scope of rain water harvesting

The potential for rainwater harvesting is huge. Everywhere we can collect rainwater particularly that is lost as runoff from the roof of the building viz.; individual homes, colonies, apartments, institutions, schools/colleges/universities, clubs and hospitals industries slums.

Need and importance of rain water harvesting : There is huge amount of monsoon flow which remains uncaptured and eventually ends up in the natural sinks, especially seas and oceans. Rain may soon be the only source of clean water. Rainwater harvesting systems use the principle of conserving rainwater where it falls and have the following benefits:

- Meet ever increasing demand of water
- Improves quality and quantity of groundwater
- Reduces flooding
- They provide relatively high quality water (in most areas), soft and low in minerals at low costs
- Direct capturing of rainwater significantly reduces our reliance on water from dams/ reservoirs and canal systems. This will exert less pressure on national water storage capacity at macro-level and can potentially reduce the need to expand dams or build new ones
- Reduces soil erosion and flooding typically created by storm water run-off in urban areas of India
- Encourages households and institutions to be equipped with an on-site and decentralized water supply of reliable quality
- Reduces silting and contamination of waterways from polluted surface run-off
- Helps to create mass awareness and appreciation for conservation of water resources

Precautions to be taken to ensure quality of harvested water :

- Roof, over which water falls, should be cleaned before rain fall and stored in storage tank for direct use.
- Do not store initial 10 to 15 minutes of runoff and it should be diverted for recharging ground water aquifers after proper filtration.

The rain water collected from roof top should pass through suitable type of filter and only then it should be stored in storage tank / used for recharging ground water aquifers.

Burning of Crop Residues – A National Threat

- **N.K.Goyal, Sandeep Rawal and B.R.Kamboj**[1]
Krishi Vigyan Kendra Damla,Yamunanagar
CCS Haryana Agricultural University, Hisar

Crop residues are important resources, not only as sources of nutrients for succeeding crops and hence agricultural productivity, but also for improved soil, water and air quality. A better understanding of the impact of crop residue management on the soil properties is needed in order to manage agricultural land sustainably. Crop residue is an important component of soil health and the burning of straw ultimately costs the producer money. Burning of crop residues influence the soil physically, chemically and biologically and results in loss of natural resources as under :

1. Reduced Soil Fertility and Organic Matter : The nutrient eco-system of soil is substantially altered with stubble burning. For instance, carbon, nitrogen and sulphur, which are essential constituents of soil fertility, are lost in massive proportions. Existing minerals in the soil are adversely affected by stubble burning, thereby negatively impacting the subsequent cropping cycle. A substantial amount of organic matter in the top layer of soil which significantly contributes to its fertility is destroyed due to the heat produced by stubble burning. Apart from loss of nutrients, some of the soil properties like soil temperature, pH, moisture, available phosphorus and soil organic matter are greatly affected due to burning.

The cumulative impact of this is reduced productivity of soil.. When straw is burned, about 90% of these nutrients are lost. It is estimated that burning of one tonne of rice straw accounts for loss of 5.5 kg Nitrogen, 2.3 kg Phosphorus, 25 kg Potassium and 1.2 kg Sulphur besides, organic carbon. Generally, crop residues of different crops contain 80% of Nitrogen (N), 25% of Phosphorus (P), 50% of Sulphur (S) and 20% of Potassium (K). If the crop residue is incorporated or retained in the soil itself, it gets enriched, particularly with organic C and N. Finally, by incorporating straw into the soil you are returning organic matter back into the soil. Leaving straw in the field also returns nutrients valuable to crop growth back to the soil. These nutrients include carbon, nitrogen, phosphorus, potassium, sulphur, calcium and magnesium.

2. Wind, Water and Soil Erosion : During heavy rain events, exposed soil is much more likely to be eroded away than soil that is protected by crop residue. The straw absorbs the impact of the rain and allows the water to infiltrate the soil rather than simply running off, carrying valuable topsoil with it. Eroding soil takes with it important crop nutrients that need to be replaced to maintain crop yields. These nutrients further degrade water quality and contribute to environmental problems. Maintaining residue on the field, both above and underground is a well known soil conservation or erosion control measure. Residue protects the soil from wind erosion, it slows down and prevents water from running off and acts as a barrier allowing rain water to infiltrate deep into the soil, recharging it with water. Wind erosion is also greatly reduced by leaving crop residue on the field. Standing straw helps to slow wind speeds at ground level, protecting the topsoil from being blown away and trapping blowing soil. Furthermore, the residue acts as a continuum gap between water in the soil and water in the atmosphere, which basically means that evaporation of soil water, in a soil covered with residue, is decreased. Crop residue can be a very effective tool in preventing soil erosion.

3. Negative Impact on Soil Properties : Heat from burning residues elevates soil temperature causing death of beneficial soil organisms. Frequent residue burning leads to complete loss of microbial population and reduces level of N and C in the top 0-15 cm soil profile, which is important for crop root development. Leaving crop residue on the fields has many known beneficial effects. For one, the residues are used as a nutrition source for soil organisms which slowly break it down into smaller and finer particles which end up constituting soil organic matter. This in turn is broken down providing nutrition for crops and reducing fertilizer requirements. Burning of crop residues affects the physical, chemical and biological properties of soil-our natural resource.

What Costs to the Soil from Stubble Burning :

1. Loss of organic matter
2. Increased potential for soil compaction
3. Greater potential for erosion (wind and water)
4. Loss of valuable nutrients (carbon, nitrogen, phosphorous, potassium, sulphur, calcium and magnesium)
5. Damage to soil structure (poor drainage and less efficient transfer of water and nutrients to the crop) organic matter from straw, stubble and chaff binds soil particles, improving soil structure. Well-structured soils drain faster and make better seedbeds. Most importantly, good soil structure improves the ability of the soil to deliver water and nutrients to crops
6. Reduced soil water infiltration and increased evaporation and run-off due to crop residue removal
7. Reduced numbers of macro and micro-

[1]Registrar, CCSHAU, Hisar

organisms, especially earthworms and therefore reduced biopores.

8. Greater use of fertilizers and pesticides:. In order to compensate for the loss of fertility, chemical-based fertilizers and pesticides are increasingly used in successive years due to decreasing soil fertility (as a result of stubble burning, and excessive use of chemical fertilizers, recurrent wheat-paddy cycle, etc.).

4. Adverse Health Outcomes : Stubble burning has been considered as an easiest and most widely used process to get rid of the crop residue. Researchers have shown that the burning of agricultural biomass residue or stubble burning is a major health hazard. It doesn't just affects the organic carbon levels of the soil but also produces an uncontrollable amount of harmful smoke that causes air pollution to the immediate vicinity. A large number of toxic pollutants are emitted into our atmosphere due to the open burning of the paddy straw/stubbles. The stubble burning shoots up the carbon dioxide levels in the air by 70%. The concentration of carbon monoxide and nitrogen dioxide also rises by 7 and 2.1% respectively, triggering respiratory and heart problems. Poisonous gases like carbon monoxide, nitrogen dioxide and oxides of sulphur are released in vast quantities due to stubble burning, thereby causing air pollution. These gaseous emissions give rise to health risks, diseases such as asthma, chronic bronchitis, decreased lung function, as well as eye and skin diseases.. These toxic gases either build a cloud of ash or formulate into smog that is formed due to the intensified amount of smoke present in the atmosphere. The burning of stubbles more often contributes to the frequent formation of brown clouds that have an adverse effect on the local air quality hampers atmospheric visibility and further impacting the reasons for climate change. Since these residues also travel across other parts of Northern India posing a serious threat to the biological life.

5. Other Ecological Damages : In addition to the deleterious effects on public health, stubble burning threatens natural resources and biodiversity. For instance, crop residue burning pollutes water bodies and terrestrial eco-systems and the smoke emitted from its combustion reduces visibility, significantly leading to numerous ecological and biodiversity threats, impacting natural resources, forests, and larger eco-systems The addition of organic materials in sufficient amounts to soil is important for improving soil health as the organic substrates influence the microbial population in the soil, which is responsible for nutrient transformations resulting in the availability of nutrients, particularly N, P, and S. Incorporation of crop residues increased the population of aerobic bacteria and fungi while burning decreased it .

Options to Burning of Crop Residues:

There are several benefits from leaving standing stubble in the field, including trapping rainwater, minimizing water and wind erosion and returning valuable.

Stubble burning is a serious issue and it must be sought on an immediate effect.

One great way to approach the issue is to think of alternatives to deal with it. Converting stubble into energy is an innovative way to address the issue. Not only it helps in reducing the greenhouse effect but also helps to fight against the threats of global warming. Setting up biomass power plants in the villages can help meet the energy needs of the villagers. Setting up biomass fuel plants to generate fuel using paddy husk or making fodder for livestock out of the collected stubble can also serve as an important step to bring down the adverse effect of crop residues finding their way into the environment during the senseless burning of crops.

A new Central Sector Scheme on 'Promotion of Agricultural Mechanization for *In-Situ* Management of Crop Residue in the States of Punjab, Haryana, Uttar Pradesh and NCT of Delhi' for the period from 2018-19 to 2019-20 has been implemented. Strategies for *in situ* crop residue management must be planned for effective implementation to enable zero burning. Various equipments/ machines such as Super Straw Management System (SMS) attached with existing combine harvester, Happy Seeder, Straw Chopper / Mulcher, Rotary Slasher, Reversible M B Plough, Rotavator, etc. have been developed and successfully demonstrated in the farmers' fields. Bailing of rice straw with the help of balers for use in the cardboard and paper industry seems to be another viable option in the future provided balers are available at an affordable price or custom hiring is encouraged.

Food security and environmental improvement depend on soil carbon, a valuable resource that can be sustained through cost-effective crop residue management. Crop residues of common agricultural crops are important resources, not only as sources of nutrients for succeeding crops and hence agricultural productivity, but also for improved soil, water and air quality. Improved residue management and reduced tillage practices should be encouraged because of their beneficial role in reducing soil degradation and increasing soil productivity.

हरियाणा खेती एवं अन्य प्रकाशनों में विज्ञापन हेतु विज्ञापन दरें

पृष्ठ	साधारण (रु०)	छः या छः माह से अधिक समय के लिए विज्ञापन दर (रु०)	रंगीन विज्ञापन दर (रु०)
चौथा कवर पृष्ठ	2500/–	2400/–	6000/–
दूसरा कवर पृष्ठ	2400/–	2300/–	5800/–
तीसरा कवर पृष्ठ	2300/–	2200/–	5500/–
साधारण पृष्ठ	2000/–	1900/–	4700/–
आधा पृष्ठ	1200/–	1100/–	–

लिफाफे का मुख पृष्ठ	–	आकार 9 सैं.मी. × 11 सैं.मी.	4000/–
पिछला पृष्ठ	–	आकार 18 सैं.मी. × 22 सैं.मी.	4000/–

जी.एस.टी. - विश्वविद्यालय के नियमों के अनुसार।

विज्ञापन देने हेतु निम्न पते पर संपर्क करें :

प्रकाशन अनुभाग

गांधी भवन

चौ. च. सिं. हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय

हिसार (हरियाणा)

फोन : 01662-255234